कृष्णदास संस्कृत सीरीज ४५

5·2

॥ श्रीः ॥

स्वप्नवासवदत्तम्

'कामेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः-

डॉ० बालगोविन्द झा

भूमिका-लेखकः-

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
४५

महाकविभासप्रणीतं

स्वप्नवासवदत्तम्

'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः–

डॉ० बालगोविन्द झा

एम. ए., पी-एच. डी.

प्रो० स० व० पटेल महाविद्यालय, भभुआ, रोहतास (बिहार)

भूमिका-लेखकः–

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी

एम. ए., पी-एच. डी.; डी. लिट्.

प्रो० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८३

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४०

मूल्य रू० : १०-००

पो० बा० नं० ११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

KRISHNADAS SANSKRIT SERIFS
45



SWAPNAVĀSAVADATTAM

OF

MAHĀKAVI BHĀSA

Edited with

'Kamaleshwaree' Sanskrit-Hindi Commentaries

By

Dr. BALGOVIND JHA
M. A., Ph. D.

Prof. S. V. Patel College, Bhabhua, Rohatas (Bihar)

For. word by

Dr. Mahaprabhalal Goswami
M. A., Ph. D., D. Litt.,

Prof. Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi



KRISHNADAS Academy

VARANASI–221001

1983

Oriental Publishers & Distributors
Post Box No. 118
Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001
(INDIA)

First Edition
1983
Price Rs. 10-00

Also can be had from
Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi-221001 (India)
Phone : 63145

समर्पणम्

पूज्य पितृचरण

पं० श्री कालीकान्त झा, व्याकरणाचार्य

के

करकमलों

में

सादर समर्पित

पुरोवाक्

महाकवि भास-विरचित "स्वप्नवासवदत्तम्" की इस "कमलेश्वरी" संस्कृत-हिन्दी व्याख्या को सुधी संस्कृतज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। संस्कृतानुरागियों की सेवा करना ही प्रस्तुत व्याख्या के प्रणयन का मौलिक उद्देश्य है। छात्र-समुदाय के हित को ध्यान में रखते हुए व्याख्या के साथ-साथ भूमिका-भाग में अत्यन्त उपयोगी सामग्री का यथासंभव समावेश किया गया है। परिशिष्ट भाग में भी कतिपय नाटकीय तत्त्वों, छन्दों एवं अलङ्कारों का संक्षिप्त परिचय देकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाया गया है।

प्रस्तुत कार्य के सम्पादन में मुझे अपने पूज्य अग्रज श्री शङ्कर झा, प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च विद्यालय, उरलाहा (पूर्णियाँ) से जो सत्प्रेरणा और शुभाशीर्वाद प्राप्त हुए हैं उनका वर्णन शब्दों में करके मैं कृतघ्न बनना नहीं चाहता। अन्य गुरुजनों के शुभाशीर्वाद भी प्रस्तुत व्याख्या के निर्माण में प्रेरक बने हैं। उन गुरुजनों में डॉ० श्री महाप्रभुलाल गोस्वामी, आचार्य एवं अध्यक्ष, दर्शन-विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी मेरे लिए प्रातःस्मरणीय हैं। मैं उन सब के प्रति नतमस्तक हूँ। "कृष्णदास अकादमी" के व्यवस्थापक श्री विठ्ठलदास जी गुप्त ने प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित कर मेरे साथ सहृदयता का जो व्यवहार किया है उसके लिए मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

व्याख्या कैसी बन पड़ी है, इसका निर्णय देना तो विद्वानों के अधीन है पर यदि मेरा यह तुच्छ प्रयास विद्वज्जनों, छात्रों एवं अन्य संस्कृतानुरागियों के कुछ भी काम आ सका तो फिर मेरा यह अधिकार होगा कि मैं अपने को कृतकृत्य समझूँ।

त्रुटियों को जन्म देना मानव-स्वभाव का अपरिहार्य अङ्ग है, अतः पुस्तक में जो भी अशुद्धियाँ होंगी उनके लिए सहृदय सुधी-जन मुझे क्षमा करेंगे ही, ऐसा विश्वास है।

दीपावली

वि. सं. २०४०

विनयावनत

बालगोविन्द झा

भूमिका

डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी

एम. ए., पी. एच. डी., डी. लिट्,

न्याय-व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य मीमांसाशास्त्री, आचार्य एवं अध्यक्ष,

दर्शन-विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

भास और उनकी कृतियों की कविकुल प्रशस्ति

कविता-कामिनी के हास भास की नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा-प्रसूत रूपक आज भी अतुलनीय प्रतिक्षण अपनी काव्य-कला की नवीनता से चकाचौंध कर रहा है। रूपकों में प्रसन्न विशद प्रवाहित सुरधुनी की नवीन प्रेरणा प्राप्त होती है। महाकवि ने वासवदत्ता को निष्पक्ष रूप में देखा और मानवीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रणय-कला को त्याग की कसौटी पर खरी पाया। अपने चिरसङ्गी के कल्याण के लिए सर्वस्व विसर्जन के साथ सपत्नी को भी अङ्गीकार करने में वह अम्लान है। आह्लाद आमोद के साथ पति की कल्याण-कामना में शान्त शाश्वत संसार के आकलन में सचेष्ट है। उसके सरस जीवन को प्रतिक्षण प्रव्रज्या की प्रखर प्रभा से परिव्याप्त है, जो नारी जीवन के लिए अनुकरणीय है। भवभूति का भद्र प्रेम सुख-दुख में अद्वैतता, विकार-शून्यता, सभी अवस्थाओं में सामरस्य, जराकृत विश्रान्ति राहित्य, प्रतिक्षण वर्द्धमानता, एवं कालकला जिस प्रेम के अनवच्छिन्न प्रवाह के अवरोध में असमर्थ है, उसी प्रेम की स्निग्ध धारा से सिञ्चित भास की काव्य-कला तूलिका-चित्रित 'स्वप्न वासवदत्ता' है।

सम्भवतः महाकवि ने अनुभव किया कि ऐसी वासवदत्ता जाग्रत् जगत् की कामिनी कैसे हो सकती हैं? अतः इसे स्वप्नवासवदत्ता मानने के लिये बाध्य हुआ, और इतिवृत्त को अपनी कल्पना के अनुरूप चित्रित किया, जिसकी पुन-रावृत्ति काव्य-जगत् में सम्भव न हो सकी।

महाकवि ने लोलापाङ्गलोचन से प्रणयमधुर को अवलोकन कर नन्दन-कानन-निवासी वासवदत्ता के त्यागमय जीवन को चिन्मय भूमि में अवतारणा का सफल प्रयास किया। महाकवि कालिदास को अपने नाटकों को अवतारणा से पूर्व भूमिका में व्याजस्तुति के रूप में भास के उद्भास को लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

महाकवि की इस वाणी ने भास को चिरप्रतिष्ठित पद पर आसीन करने में सङ्कोच नहीं किया। इतना ही नहीं मालविकाग्निमित्र में स्पष्ट शब्दों से महाकवि ने कहा—"प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादोनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं कालिदासस्य कृतौ बहुमानः" बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रथम उल्लास में साम्बशिव एवं व्यास आदि को प्रणामाञ्जलि अर्पित कर भास की प्रशस्ति को उपस्थापित किया—

सूत्रधार के द्वारा प्रारब्ध, अनेक भूमिकाओं से युक्त पताका आदि प्रासङ्गिक कथाओं से विभूषित नाटकों की रचना कर देवकुल के समान यश के भागी हुए।

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

श्रीगणपति शास्त्री ने भास-नाटक-चक्र के रूप में भास की कृतियों को मनीषयों के सम्मुख रखकर उनको प्रथित यशोराशि से उद्भासित किया और बाणभट्ट की लेखनी के द्वारा लिखित 'नाटकैः' इस बहुवचन प्रयोग को समर्थित किया, अतः, उनकी कृतियों के विषय में समस्या का उद्भावन अन्वेषण की दृष्टि से उचित होते हुए भी तथ्य की दृष्टि से विप्रतिपत्तिशून्य है।

आठवीं शताब्दी के 'गउडवहो' महाकाव्य के प्रणेता वासवदत्ता के अग्नि-दाह की कल्पना से इतने प्रभावित थे कि भास को ज्वलनमित्र नाम से ही अभिहित किया—अग्निमित्र की यशोराशि सर्वत्र भासमान है। "भासम्मि जलणमित्तेकन्ती देवे अ जस्स रहु आरे"।

आठवीं शती के काव्यालंकारसूत्र—(गउडवहो ८००) वृत्ति के रचयिता वामन ने स्वप्नवासवदत्तम् के पद्य को उद्धृत कर इनकी रचना की दिग्दिगन्त-व्यापिनी कीर्ति को भासित किया—.

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम् ।। (स्व० ४।८ का० सू० ४।३।२५)

सातवीं शताब्दी में दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरी' कथा की भूमिका में भास को अभिनन्दित किया है ।

अशरीर होते नाटकों के द्वारा भास आज भी स्थित हैं । क्योंकि मुख आदि के सुलक्षण से शरीर का स्पष्ट बोध होता है ।

सुविभक्तमुखाद्यंकैः व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासश्शरीरैरिव नाटकैः ।। (अ० सु० क० ११)

जयदेवजी भासकी कृतियों से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने कविता-कामिनी के हास के रूप में भास का निर्देश किया है--

भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः । (प्र० रा० १।२२)

बौद्धाचार्य ङिङ्नाग ने कुन्दमाला में दशरथ की प्रतिमा का उल्लेख किया है । जब कि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में ऐसा प्रसङ्ग निर्दिष्ट नहीं किया है । अतः भास का प्रतिमानाटक सुख्यात नहीं, कवियों के लिए अनुकरणीय था ।

इन प्रशस्तियों के परिप्रेक्ष्य में महाकवि भास अपनी रचनाओं से महाकवियों के मध्य विशिष्ट स्थान प्राप्त करता रहा है--इसमें सन्देह का अवसर नहीं है । दो तीन महाकवियों की गणना में यह भी गण्य है, अतः, बहुमान-सम्पन्न ऐसे कवि का परिचय एवं काव्यकला स्वभावतः जिज्ञास्य है । उसी जिज्ञासा के उपशमन की दृष्टि से कुछ लिखने की बाध्यता का अनुभव कर रहा हूँ ।

भास का आविर्भाव

भारतीय मनीषी महाकवियों ने देशकाल के परिच्छेद से मुक्त अखण्ड भारतीय दृष्टि को अक्षुण्ण रखते हुए अपने को काल, कुल की सूचना से विमुक्त

रखा है। भारती भाषा भारतीय होने से भारतवासी होने की सूचना के लिए पर्याप्त है, अतः इससे अधिक लिखना किसी सम्प्रदाय एवं किसी प्रान्त से आबद्ध करना है, जो इन मनीषियों को अभीष्ट नहीं था।

संस्कृत के विभिन्न आचार्यों ने भास का समय ९०० वर्षों में दोलायमान रखा है।

१—मिड़े, दीक्षित, गणपतिशास्त्री, हरप्रसादशास्त्री, खुपेरकर, किरत और टटके ने ई० पूर्व छठी से चतुर्थ शताब्दी के मध्य में माना है।

२—जागीदार, कुलकर्णी, शेम्बवनेकर, चौधरी, ध्रुव और जायसवाल ने ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी में माना है।

३—कोनो, लिण्डेन्यू, सरूप, सौली और वेलर ने द्वितीय शताब्दी में माना है।

४—बनर्जी, शास्त्री, भण्डारकर, जेकोबी, जौली और कीथ ने भास का समय ईसा की तृतीय शताब्दी में माना है।

५—लेस्नी और विण्टरनित्ज ने ईसा की चतुर्थ शताब्दी इनका समय माना है।

६—शङ्कर ने ईसा का पञ्चम एवं षष्ठ शतक माना है। इनके अतिरिक्त आचार्यों ने भी इनके समय के लिए अपना मन्तव्य व्यक्त किया है, किन्तु कालिदास आदि ने भास का नाम निर्दिष्ट किया है, अतः, चतुर्थ शताब्दी से आगे इनको ले जाना सम्भव नहीं है।

डा० पुसालकर ने भास के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इनका समय ईसा से पूर्व चतुर्थ एवं पञ्चम शतक माना है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारक और स्वप्नवासवदत्तम् में प्राचीन राज्यों का उल्लेख मिलता है, वे राज्य चतुर्थ शतक में वर्तमान थे।

अस्मत्सम्बद्धो मागधः काशिराजो बाङ्गः सौराष्ट्रो मैथिलः शूरसेनः।
एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मां कस्ते वैतेषां पात्रतां याति राजा॥

(प्रति० यौ० २।८)

स्वप्नवासवदत्तम् में उज्जैन के राजा प्रद्योत, कोशाम्बी के राजा उदयन और मगध के राजा दर्शक का उल्लेख मिलता है। ईसा से पूर्व छठी शती तक ही इनका राजत्व समाप्त हो चुका था। भास ने दर्शक की राजधानी राजगृह कही है, किन्तु अजातशत्रु के समय मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी, अतः मौर्यकाल से पूर्व इनका समय मानने में कोई आपत्ति नहीं है। इन तथ्यों के आधार पर डॉ० पुसालकर ने भास का समय महापद्मनन्द का राजत्व बताया है। इसके शासन काल में समस्त उत्तर भारत इसके अधीन था। भास की निर्दिष्ट राज्य-सीमा महापद्मनन्द के राज्य से साम्य रखती है।

ए० एस० पी० अय्यर ने भी इसका समर्थन किया है। अय्यर का अनुमान भास को कौटिल्य का सामयिक बताता है। क्योंकि, कौटिल्य अर्थशास्त्र के १० वें अधिकरण के तृतीय अध्याय में प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अधोलिखित पद्य का उद्धरण दिया है—

नवं शरावं सलिलैः सपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥

(प्रति० ४।२)

प्रतिज्ञायौगन्धरायण के तृतीय अङ्क में ही "चन्दं गिलदिलाहू। मुंच मुंच चन्दं। यदिण मुंचेशि, मुहं दे पाडिअ मुंचावइस्सं एशी एशी दुट्ठअश्शी परिब्भट्टे आ अच्छेदि" इस गद्य में चन्दशब्द चन्द्रगुप्त मौर्य का और राहु राक्षस का प्रतीक है। इस प्रतीक के आधार पर भास को ई० पू० चतुर्थ शती का माना है।

भास के नाटकों के भरत-वाक्य में राजसिंह पद आया है और मौर्य राजा राजसिंह कहे जाते थे। अशोक ने सारनाथ के स्तम्भ में तीन सिंहों को प्रतीक रूप में अङ्कित किया है। तीन सिंहों का प्रतिनिधित्व चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार और अशोक करते हैं। इन तीनों मौर्य्यवंशी राजाओं के प्रताप की सूचना सिंहों से होती है। अय्यर की दृष्टि में चन्द्रगुप्त ही राजसिंह है। चाणक्य की प्रतिज्ञा के समान यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा होने से ये दोनों समसामयिक हैं। जीवसिद्धि के साहाय्य से चाणक्य ने पाटलिपुत्र पर अधिकार किया, योगन्ध-

रायण ने श्रमणक के सहयोग से उज्जयिनीनरेश प्रद्योत को अधीनस्थ किया। चन्द्रगुप्त का विवाह नन्दवंश की कुमारी दुर्धर से किया है, यह विवाह पद्मावती की ओर संकेत करता है। नीलगिरि हाथी की प्रतीकात्मकता पौरुष के प्रसिद्ध हाथी की समकक्षता को उपस्थित करता है। भारत में शत्रु की सेना के शान्त होने की चर्चा सेल्युकश की सेना के दमन करने की ओर निर्देश करती है। इसप्रकार भास के साथ कौटिल्य के सिद्धान्तों का समन्वय होने से ईसा से पूर्व चतुर्थ शताब्दी इनका समय अय्यर ने माना है।

अय्यर ने अपने भास के उक्त काल के समर्थन में यह भी कहा हैं कि हिमालय से विन्ध्यपर्वत पर्यन्त और आसमुद्र पृथ्वी पर चन्द्रगुप्त का राज्य था, इसी को राजसिंह कहा गया है।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'महाकवि भास' में अय्यर के इन सिद्धान्तों की अवतारणा कर भास और चाणक्य के द्वारा प्रस्तुत चित्रण के आधार पर भास को चाणक्य से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है।

इसी प्रकार पुसालकर ने राजसिंह को नन्दवंश के लिए प्रयुक्त माना स्टेनकोनो ने राजसिंह को क्षत्रप रुद्रसिंह प्रथम से समन्वय किया है। ध्रुव ने, शुंगवंशीय पुष्यमित्र से समन्वय किया, जायसवाल ने कण्वनारायण और मिडे ने इसको उदायी माना है।

नाटक के भरत-वाक्य के आधार पर विन्ध्य और हिमाचल से संवेष्टित समस्त उत्तरी भारत किसी एक राजा के अधीन था यह स्थिति पूर्व चतुर्थ शताब्दी की है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य प्रथम सम्राट् के समय की है। अतः, हरप्रसाद शास्त्री ने राजसिंह के रूप में नन्दवंश के किसी राजा से की है, अतः, भासका ई० पू० चतुर्थ शताब्दी होना चाहिए[1]।

सामाजिक और राजनीतिक विभिन्न स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डा० शास्त्री ने भास को ४—३ ईसा पूर्व माना[2] है।

---

१. महाकवि भास पृ० ३१।

2. A. C. Pushalkar. Bhasa–A study. P. 70–79।

डा० विण्टरनित्स ने कालिदास की भाषा और शैली के सान्निध्य के कारण अश्वघोष का समय ईस्वी की द्वितीय शती और भास को तृतीय शती का माना है।

डा० कीथ ने कालिदास के उल्लेख के आधार पर भास को अश्वघोष और कालिदास का मध्यवर्ती माना है। कालिदास को चतुर्थ शतक का मानने पर भास को ३५० वर्ष से पूर्व मानना पड़ेगा।

स्टेनकोनो ने विन्टरनित्स के विरुद्ध भासको ईसा की द्वितीय शती का माना है।

डॉ० दासगुप्त ने गणपतिशास्त्री एवं अन्य विदेशीय मनीषियों के विचार की आलोचना करते हुए भाषा और शैली के आधार पर अश्वघोष तथा कालिदास का मध्यवर्ती ही माना है[1]। क्षत्रप राजाओं के आश्रित होने के कारण श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कथावस्तुओं के निर्वाह में ये अधिक सफल रहे हैं। स्टेनकोनों ने क्षत्रपों का समय ईसा का द्वितीय शतक है, अतः, इसी समय नाटककार भास की स्थिति होनी चाहिए, प्रथम रुद्रसिंह के समय में ही भास का जन्म माना है।

डॉ० ए० पी० बनर्जी ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० के मध्य में माना है, अर्थात् दूसरी शती के बाद और तीसरी शती से पूर्व इनका समय माना है, क्योंकि, ये ब्राह्मण धर्म और विष्णु के उपासक थे।[3]

प्रदर्शित सूक्तियों के आधार पर भास का समय कालिदास से पूर्व निर्विवाद सिद्ध है। अनेक मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भास का समय ईसा पूर्व ३२७ के लगभग माना है। इसकी पुष्टि

---

1. S. N. Dasa Gupta, History of Sanskrit Literature p. 172।

2. Stenkonow:—Indian Drama P. 5।

३. दि जर्नल ऑफ दि विहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसायटी भाग—९ मार्च १९२३।

वर्णित समाज-व्यवस्था के आधार पर भी होती है। अर्थात् ई० पू० चतुर्थ शती में अधिक आग्रह है[1]।

डॉ० सूर्यकान्त ने भास का समय १५० ई० से २५० ई० माना है।

डॉ० कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग ने ई० पू० ५०० इनका जन्म-काल माना है। यह सत्य है कि भास के समय तक पाणिनि का वर्चस्व प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। कौटिल्य अर्थशास्त्र की भी चर्चा नहीं है, महेश्वर प्रणीत योगशास्त्र उपलब्ध नहीं है, किन्तु, पातञ्जल योगशास्त्र की अवगति इनको नहीं थी। मानवीय धर्मशास्त्र सम्भवतः गौतम लिखित मानव धर्मशास्त्र का बोधक हो सकता है। प्रतिमानाटक की पंक्ति में इन शास्त्रों की चर्चा उपलब्ध है। "भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रम्, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्, प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च।

इन प्रदर्शित तथ्यों के आधार पर भास को ईसा पूर्व तृतीय शतक से चतुर्थ शतक में मानना अनुचित नहीं है।

टी० कृष्णमाचारी ने अपना विशेष निर्णय प्रस्तुत किये बिना ही गणपतिशास्त्री का मत प्रदर्शन करते हुए उपसंहार किया है।

भास का जीवनवृत्त

प्राचीन कवियों के समान ही भास ने अपने नाटकों में अपने नाम तक की चर्चा नहीं की है। किम्वदन्तियों के आधार पर कुछ कहा जा सकता है, किन्तु, वे किम्वदन्तियाँ सर्वथा निराधार-सी प्रतीत होती हैं। धावक के नाम से भास की प्रसिद्धि मानी गई है, किन्तु, श्रीहर्ष और भास के समय में इतना अन्तराल है कि इनको समकालीन माना ही नहीं जा सकता है।

एक परम्परा के अनुसार व्यास और भास की प्रतिष्ठा के लिए मतभेद की चर्चा की गई है। दोनों अपने को विशिष्ट प्रतिभाशाली मानते थे। निर्णय के लिए दोनों के ग्रन्थों को अग्नि में अर्पित किया गया, किन्तु भास का

---

१. महाकवि भास पृ० ४२।

स्वप्नवासवदत्तम् अग्नि में दग्ध नहीं हो सका और अन्य नाटक अग्नि में दग्ध हो गये। इसकी पुष्टि राजशेखर की इस उक्ति से मानी जाती है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

इस उक्ति से यह तो सर्वथा सुनिश्चित है कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' एक श्रेष्ठ नाटक है, जो आज भी मनीषियों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। डॉ० राजा ने अपने लेख के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की है[1]।

प्रस्तुत श्लोक की भिन्न व्याख्या भी डॉ० राजा ने प्रस्तुत की है। उनके कथन का सारांश है कि भास के नाटकों में दैहिक दृश्यों का बाहुल्य है, अतः उन दृश्यों के दहन के साथ वे सब भस्मावशेष रह गये, किन्तु, 'स्वप्नवासवदत्तम्' नहीं जल सका। इस व्याजस्तुति के द्वारा 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक के सम्मुख सौमिल्ल आदि के नाटक नाट्य-कला की दृष्टि से स्थिर न रह सके। स्वप्नवासवदत्त काव्यकला-कसौटी पर खरा उतरता है। यह एक ऐसा नाटक है जहाँ जीवनाधायक तत्त्व समुपलब्ध हैं। भारतीय नारी और आमात्य की कर्तव्य-संवेदन-शीलता सुलभ है।

भास-व्यास-कलह में भी अनेक कृतियों के लेखक एवं वैदुष्य तथा कवित्व शक्ति का वैभवतादात्म्य प्रदर्शित कर दृश्य काव्य की रचना के द्वारा भास का वर्चस्व व्यक्त किया गया है।

प्रो० ध्रुव ने गोत्र के आधार पर प्रसिद्धि मानकर अगस्त्य गोत्र के हेमोदक शाखा के 'भाष' गोत्र में महाकवि का जन्म होने से उसी के अपभ्रंश के रूप में

---

1. It is interesting to see how Dr. Raja Comes to the meaning. Bhasa's dramas contained Conflagrati on Scenes. These fires burnt all other dramas. But Svapna alone remained safe. So according to this interpretation the Svapna was a rival to Bhasa's works.

Journal of oriental Research, Madras, I, P. 227.

भास है। ये ब्राह्मण जाति के तथा प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे। कर्णभार के प्रथम के २२-२३ पद्यों के द्वारा यज्ञानुष्ठान, गो, ब्राह्मण का महत्व प्रदर्शित हो रहा है, अतः इनको ब्राह्मण मानना समीचीन प्रतीत होता है।

भास पिता, पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव; सद्गृहस्थ की मर्यादा से पूर्ण परिचित ही नहीं वैदिक संस्कृति के प्रति इनकी अपार श्रद्धा भी थी। भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों का समन्वय इनके जीवन में था, इसीलिए—

"चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः" (स्व० १।४) भाग्यपंक्ति पहिए के आर की भाँति निम्नोन्नत होती रहती है।

"सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥"

(प्र० यो० १।१२)

भास का जन्म स्थान

काल और वंश के समान ही इनके जन्म-स्थान के विषय में भी कोई निश्चित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। कवि के भौगोलिक एवं स्थान-विशेष के प्राकृतिक चित्रण के परिप्रेक्ष्य में उसके लिए किसी स्थान-विशेष का निर्णय करना भ्रान्तिविजृम्भित ही मानना होगा। क्योंकि, क्रान्तद्रष्टा अपनी प्रतिभा के प्रबोध में सम्पूर्ण विश्व का साक्षात्कार करता है। असत्व के आपादक आवरण को कवि अपनी शब्दधारा से हटाकर निरावृत विश्व का ज्ञान रखता है। अभानापादक आवरण की निवृत्ति के लिए रसादि की आवश्यकता रहती है। अतः नाटक में वर्णित उज्जयिनी, मगध और बदरीनाथ इन स्थानों में से किसी एक को उन्होंने अपने जन्म से अलङ्कृत किया है—यह इसके लिए कोई बहुत बड़ा आधार नहीं है। कृष्णचरित्र, रामचरित्र और उदयनचरित्र का वर्णन अयोध्या, मथुरा, मगध, उज्जयिनी को छोड़कर कैसे सम्भव है ?

किन्तु उपक्रम और उपसंहार वाक्य के आधार पर उसका स्थान-विशेष के प्रति आग्रह अभिव्यक्त होता है।

मेरे राजसिंह महाराज उदयन समुद्र तक विस्तृत हिमाचल और विन्ध्या-

चल रूपी दो कर्णकुण्डलों से युक्त एक श्वेतपत्र से चिह्नित सम्पूर्ण पृथिवी का पालन करें[1]।

आरम्भ में बलराम का स्मरण एवं द्वितीय पद के द्वारा मगधराज का स्मरण इन तीनों स्थानों पर केन्द्रित होने की बाध्यता उपस्थित करता है। पुनः मगध के अनेक स्थानों का तपोवन एवं प्रशस्ति की दृष्टि से अभ्यास मगध के प्रति कुछ सोचने को बाध्य करता है। साथ ही आगत आपत्तियों के उद्धार में एकमात्र सहायक मगध का महत्व प्रतिक्षण वर्द्धमान है प्रथम अङ्क की समाप्ति में वासवदत्ता का कञ्चुकी के साथ गमन के समय उसी मगध का वर्णन सुलभ है।

द्वितीय अङ्क में भी मगध की पद्मावती का ही वर्णन है। आश्चर्य की बात है 'स्वप्नवासवदत्तम्' की रचना और आरम्भ में उसमें पद्मावती का चरित्र परिव्याप्त है। वासवदत्ता के विवाह की चर्चा भी कवि मञ्च पर प्रदर्शित नहीं करता है। वासवदत्ता के चरित्र में यदि पद्मावती का हस्तावलम्बन एवं न्यास परिरक्षण तथा कर्तव्य-परायणता परिव्याप्त न हो तो 'स्वप्नवासवदत्तम्' का स्वरूप ही नहीं रहेगा। अतः कवि का मगध एवं मागध के प्रति पक्षपात सुस्पष्ट है। मगध के प्रति कवि को इतना अधिक आदर है कि वह वासवदत्ता से उत्तराकुरु की अनुभूति मगध में करा देता है। विवाह के कारण विजयप्राप्ति मगध की राजनीति का संकेत देता है। नक्षत्र, मुहूर्त आदि का भास के नाटकों में महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। यह प्राचीन परम्परा होती हुई मगध से सम्बद्ध है। मगध का वर्चस्व एवं अतिशय आदर भावना इनको मागध होने का संकेत देती हैं।

उज्जयिनी—ईसा से पूर्व उज्जयिनी की प्रसिद्धि हो चुकी थी, मौर्यकाल में यह समृद्ध नगरी थी। महासेन प्रद्योत वहाँ का राजा बुद्ध के समय वहाँ वर्तमान था। उज्जयिनी के प्रति ममता का आधिक्य एवं वहाँ साधारण स्थानों की अवगति उनको वहाँ का होना सिद्ध करती है, किन्तु, यह सत्य है कि मगध की कृपा के विना उज्जयिनी का वर्चस्व सुरक्षित नहीं रह सका और पद्मावती

१. स्वप्न वा० ६।१९।

के साथ विवाह कर उदयन एवं उज्जयिनी की रक्षा सम्भव हो सकी। अतः अनेक तर्कों के आधार पर इनको मागध ही माना जा सकता है। किन्तु, निश्चित रूप में भारतीय से अधिक कहना कठिन है।

भास के नाटक

भास के तेरह नाटक प्रसिद्ध हैं। डा० पुसालकर ने शैली, संवाद आदि के आधार पर कृतियों का अधोलिखित क्रम प्रस्तुत किया है।

१. दूतवाक्य। २. कर्णभार, ३. दूतघटोत्कच, ४. उरुभङ्ग, ५. मध्यम-व्यायोग, ६. पञ्चरात्र, ७. अभिषेक, ८. बालचरित, ९. अविमारक, १०. प्रतिमा, ११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १२. स्वप्नवासवदत्तम् और १३. चारुदत्त।

विषय, शैली एवं निरूपण-पद्धति आदि के आधार पर भास की रचनाओं का अय्यर ने इस प्रकार क्रम निर्द्धारण किया है—

१. दूतघटोत्कच, २. कर्णभार, ३. मध्यमव्यायोग, ४. उरुभङ्ग, ५. दूत-वाक्य, ६. पञ्चरात्र, ७. बालचरित, ८. अभिषेक, ९. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १०. अविमारक, ११. प्रतिमानाटक, १२. स्वप्नवासवदत्तम्, १३. चारुदत्त।

दूतघटोत्कच—यह नाटक महाभारत की कथा पर आधृत है। कथानक को लेकर अपनी प्रतिमा-प्रसूत घटनाओं का मिश्रण कर रोचक रूप में उपस्थित किया है। हिडम्बापुत्र घटोत्कच कृष्ण का दूत बनकर कौरव-सभा में आता है। दौत्यप्रधान होने से इसका दूतघटोत्कच नाम दिया गया है। इसकी कथानक कविकल्पना-प्रसूत है। घटोत्कच का कृष्णदूतरूप में आना महाभारत में उपलब्ध नहीं है इसकी प्रधानता के आधार पर इसका यह नाम दिया गया है।

अभिमन्यु की मृत्यु के बाद दूत घटोत्कच धृतराष्ट्र के सम्मुख उपस्थित होता है और युद्ध का भयंकर फल सूचित करता है, दुर्योधन व्यङ्ग्य करता है, घटोत्कच भी वैसा ही उत्तर देता है। दोनों अशान्त हो जाते हैं, घटोत्कच युद्ध के लिए ललकारता है। धृतराष्ट्र किसी प्रकार शान्त करते हैं। अभिमन्यु का बदला अर्जुन लेगा इस सूचना के साथ घटोत्कच चला जाता है।

कर्णभार—महाभारत के आधार पर इस रूपक की रचना हुई है।

महाभारत की कथा के अनुसार कर्ण का यह नियम था कि वह मध्याह्न में जल के मध्य खड़ा होकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर ब्राह्मणों को दान देता था। इस अवसर पर उसके लिए अदेय कुछ भी नहीं था। इन्द्र ने इसी अवसर पर ब्राह्मण रूप में उपस्थित होकर भिक्षा के रूप में कवच की याचना की।

कविवर भास ने इस कथा को अपनी कल्पना से रूपक के अनुरूप सङ्कलित किया है। वह जल में उपस्थित नहीं वरन् रथ पर आरूढ़ अर्जुन के साथ युद्ध के लिए तत्पर हो अर्जुन के सम्मुख रथ ले जाने के लिए आदेश देता है। शल्य और परस्पर वार्तालाप के प्रसङ्ग में कर्ण अपने शाप के विषय की सूचना देता है। शल्य को दुःखी देखकर कर्ण युद्ध के गुणों का वर्णन करता है और यह कहता है कि युद्ध में मरने पर स्वर्ग और विजयी होने पर यश और राज्य की प्राप्ति होती है।

महाभारत की कथा में कर्ण स्वयं इन्द्र से शक्ति की याचना करता है, किन्तु भास का कर्ण उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित है, अतः, वह स्वयं प्रतिदान की इच्छा व्यक्त नहीं करता है, देवदूत ब्राह्मण के वचन के पालन के लिए शक्ति को ग्रहण करने के लिए कहता है, और कर्ण इस अनुरोध को ठुकरा नहीं पाता है। आश्चर्य की घटना है कि विप्रवेशधारी इन्द्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करता है।

डा० भट्ट के अनुसार महाकवि भास ने कर्ण की कथा में नवीन कल्पना-प्रसूत विषयों का सन्निवेश कर कर्ण का स्वरूप प्रदर्शित किया है इसका अङ्गीकृत रस करुण है।

मध्यमव्यायोग—इस नाटक की रचना कुन्ती के मध्यम पुत्र भीम को आधृत कर एकांकी रूपक में की गई है। इस कथावस्तु का मूल स्रोत प्रथम अध्याय के १५१-१५५ सर्ग में है। महाकवि भास ने महाभारत की कथा को विशिष्ट प्रभावपूर्ण शैली में निबद्ध कर अतिशय मनोहर बना दिया है घटोत्कच का अपने अज्ञात पिता से युद्ध और हिडिम्बा सम्मेलन कवि कल्पना-प्रसूत है। भीम और घटोत्कच के चरित्र को व्यक्त करते हुए ब्राह्मण परिवार को माध्यम चुना तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रभाव से मध्यम को समर्पित करने

की दृष्टि प्राप्त की। घटना-प्रधान इस नाटक में कवि की प्रतिभा कथावस्तु के संयोजन से रस-प्रवाह में सक्षम है।

भास ने घटोत्कच और हिडिम्वा में मानव-स्वभाव का समावेश किया है। इस नाटक के पढ़ने से भीम से मिलन के लिए ही यह षड्यन्त्र किया है। महाभारत में इतस्ततः विकीर्ण कथाओं को एक माला का रूप ही नहीं दिया वरन् अति हृदयावर्जक रूप दिया हैं। ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को लेकर घटोत्कच माता हिडिम्बा के पास जा रहा है, पानी पीने गये हुए मध्यम को वह बुलाता है और मध्यम पुत्र भीम उपस्थित होता है और युद्ध के बाद हिडिम्बा के सम्मुख जाते ही वह पहिचान लेती है। भीम की उदारता आत्म-समर्पण की भावना के प्रदर्शन में कवि ने अपनी कुशल काव्य-प्रतिभा का अपूर्व सन्निवेश किया है। जिससे द्रष्टा सर्वथा एकतानहृदय से आनन्द की अनुभूति करता है जो कुशल शिल्पी ने ही प्रस्तर को काँट-छाँट कर अपूर्व लावण्य की अभिव्यक्ति की है।

उरुभङ्ग—नाटक की कथा का मूल आधार महाभारत है भीम और दुर्योधन के गदा-युद्ध का वर्णन मिलता है। भीम दुर्योधन की गदा के प्रहार से मूर्च्छित हो जाता है किन्तु, सहसा उठकर भीम उस पर आक्रमण करता है वह बचने के लिए उछलता है, अवसर पाकर जङ्घा पर प्रहार कर उसे तोड़ डालता है। भूमि पर गिरते ही लात का प्रहार कर भीम उसका अपमान करता है। कतिपय परिवर्तन के साथ इस कथा को एक अङ्क के प्रशस्त रूप में बड़ी कुशलता के साथ वस्तु-योजना कर निबद्ध करते हैं। दुर्योधन के उरुभङ्ग कथानक पर ही यह केन्द्रित है।

इस प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण स्वयं उपस्थित हैं और दुर्योधन की जांघ को तोड़ने का संकेत प्राप्त कर भीम के प्रहार से वह गिर जाता है। व्यास और विदुर के साथ बलराम भी दर्शकों में उपस्थित हैं। धृतराष्ट्र, गान्धारी और दुर्योधन की पत्नियाँ भी वहाँ उपस्थित हैं। हस्तिनापुर की यह घटना है युद्ध-भूमि की नहीं।

दुर्योधन श्रीकृष्ण के प्रति क्रुद्ध नहीं है, वह अपने कृत्य के लिए दुःखी और

बलराम के क्रोध करने पर वह कहता है--मेरी उपस्थिति में मेरी उपेक्षा कर भीम ने मर्यादा के विरुद्ध दुर्योधन की जाँघ पर गदा का प्रहार कर उसे गिरा दिया है, मैं इस अनीति को सहन नहीं करूँगा भीम का वक्षस्थल विदीर्ण कर इसे इसका फल दूँगा। इस प्रसङ्ग में दुर्योधन कहता है--भगवन् ! भीम ने युद्ध-मर्यादा का ध्यान न देकर जंघा पर गदा का प्रहार कर गिरा दिया है। मेरा शरीर अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है। आप प्रसन्न हों भूमि पर पतित मेरे इस मस्तक का प्रणाम स्वीकार करें, क्रोध शमन कर कुरुकुल में जलाञ्जलि के लिए पाण्डवों को जीवित रहने दें, वैर की अब आवश्यकता नहीं है। हम लोग अब समाप्त हो चुकें।

बलराम ने कहा--तुम क्षणभर के लिए जीवन धारण करो मैं पाण्डवों का संहार कर तुम्हारी स्वर्ग-यात्रा में सहायक बन सकूँ।

गुरुदेव ! भीम की प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी, मेरे सभी भाई मारे गये, मैं अन्तिम क्षण की प्रतीक्षा में हूँ, अब युद्ध से क्या लाभ है। बलराम ने कहा कि मेरे सम्मुख भीम ने छल से तुम्हें मारा इसका मुझे दुःख है। यदि आपको यह विश्वास है कि मैं छल से मारा गया हूँ तो मुझे पूर्ण सन्तोष है। मुझे तो क्षारसागरशायी, पारिजात-हरणकर्ता लोकप्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा में प्रविष्ट काल का ग्रास बनाया है।

धृतराष्ट्र और गान्धारी का आगमन होता है, प्रलाप के साथ दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन वीरोचित सान्त्वना देता हुआ, पत्नियों को अपना महत्त्व ख्यापन करता हुआ साहस प्रदान करता है। पुत्र दुर्जय को उपदेश देते हुए कहता है--प्रशंसितश्री अभिमानी दुर्योधन तुम्हारा पिता है यह सोचकर तुम दुःख त्याग करो। अश्वत्थामा का आगमन होता है और उसकी उत्तेजना-पूर्ण बातों को सुनकर वह उनको विनय-पूर्वक समझता है। अश्वत्थामा यह कहता है कि आज रात्रि में रण रचना कर पाण्डवों को समाप्त कर दूँगा। महाप्रयाण की यात्रा का आरम्भ एवं विचलित मुनिजन तपोवन में धृतराष्ट्र का प्रस्थान होता है।

दूतवाक्य—इसकी कथा महाभारत से ली गई हैं। उत्तरा और अभिमन्यु का परिणय हो चुका है। पाण्डवों का प्राप्तव्य दिलाने के लिए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की ओर से दौत्य कार्य सम्पन्न किया है। धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के आगमन पर राजसी स्वागत की तैयारी की, किन्तु कृष्ण कुन्ती के पास गये, दुर्योधन से मिले, उसके द्वारा प्रीति-भोज को अस्वीकार कर विदुर के घर रात्रि व्यतीत की। विदुर के साथ राजसभा में उपस्थित हुए। दाय-भाग देने का प्रस्ताव किया, किन्तु, दुर्योधन ने अस्वीकार कर दिया। गान्धारी ने भी बात मानने के लिए कहा, किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया, कृष्ण को बन्दी बनाने की चेष्टा को धृतराष्ट्र ने रोका।

महाभारत की कथा को अपनी प्रतिभा से मिश्रित कर उपस्थित किया है। धृतराष्ट्र के स्थान पर दुर्योधन राजा है, कृष्ण को बन्दी बनाने के लिए सक्रिय चेष्टा उपलब्ध है। माता गान्धारी की बात की उपेक्षा कर सभा का परित्याग कर देता है। रंगमच पर शरीरधारी शस्त्रों की अवतारणा महाकवि की प्रातिभ उद्भावना है। इस नाटक का कथोपकथन सरस और ग्राह्य है। सात्यकी के द्वारा अपने बन्दी बनाने की बात ज्ञातकर अपना विश्वरूप प्रकट करते हैं। जिसको देखकर दुर्योधन मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रसङ्ग में नाटकीय स्वरूप अपूर्व है। भास राजसिंह के एकछत्र राज्य की कामना इसके भरत-वाक्य से करता है। इसमें पुरुष-पात्र का बाहुल्य है। यह रूपक के भेद व्यायोग के अन्तर्गत है। श्रीगणपतिशास्त्री ने इसका प्रधान रस धर्मवीर माना है और श्रीकृष्ण को नायक माना है। फलप्राप्ति दुर्योधन को होने से इस रूपक का नायक दुर्योधन को माना है तथा वीर रस माना गया है।

पञ्चरात्र—पञ्चानां रात्रीणां समाहारः, अथवा पञ्चरात्रमस्ति विषयत्वेनास्य--इस विग्रह के अनुसार पाँच रात की घटनाओं के वर्णन से प्रस्तुत यह नाटक है। कुरुराज दुर्योधन एक बृहत् यज्ञ का आयोजन करता है। यज्ञ की समाप्ति पर आचार्य द्रोण से दक्षिणा स्वीकार करने की प्रार्थना की जाती है। द्रोण पाण्डवों के लिए आधे राज्य को देना ही अपनी दक्षिणा के रूप में मानता है। अस्वीकृति की मुद्रा से द्रोण क्रुद्ध हो जाते हैं। शकुनि से विचार के पाँच

रात्रि के अन्दर पाण्डवों का पता लगने पर राज्य का अर्ध देने की स्वीकृति देता है। यह रूपक तीन अङ्क का है।

इस रूपक की कथा महाभारत विराट् पर्व से ली गई है। कीचक द्वारा द्रौपदी का अपमान होने पर भीम ने कीचक का वध किया था। कौरवों ने रुष्ट होकर विराट पर आक्रमण किया और उसके गोधन को हरण किया।

महाकवि ने इसी कथा को नाटकीय शैली के द्वारा रोचक एवं परिपुष्ट कर प्रस्तुत किया है। सूई के अग्रभाग को भी न देने वाला नाटककार का दुर्योधन गुरु की आज्ञा से आधा राज्य देने को तत्पर है।

इस नाटक में महाकवि ने अपनी प्रतिभा के आधार पर निम्नलिखित परिवर्तन के द्वारा इसकी प्रेषणीयता में मणिकाञ्चन-संयोग प्रस्तुत कर दिया है--

(१) महाभारत में दुर्योधन के यज्ञ की चर्चा नहीं है, महाकवि की यज्ञ की कथा ने अपूर्व चमत्कार पम्पन्न कर दिया है।

(२) यज्ञ का प्रधान आचार्य द्रोण को बनाया है तथा यज्ञ की समाप्ति पर दुर्योधन द्रोणाचार्य को दक्षिणा के लिए आग्रह करता है और आचार्य पाण्डवों को अर्द्धराज्य दिलाने के रूप में आग्रह-पूर्वक दक्षिणा स्वीकार करते हैं। आचार्य अपने आचार्यत्व का इस दिशा में प्रयोग करते हैं। इस प्रयोग ने नाटक में एक अपूर्व समन्वय प्रदर्शित किया है।

(३) शकुनि द्रोणाचार्य की दक्षिणा को प्रवञ्चना कहता है। उसका विरोध करता है, अन्त में पाँच दिनों में पाण्डवों की प्राप्ति के साथ राज्य का अर्द्धभाग देने की स्वीकृति देता है।

(४) अभिमन्यु विराटनगर में अत्यधिक पराक्रम प्रदर्शित करता है। इस प्रकार इस रूपक में अतिशय मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए कवि ने कथावस्तु को अपूर्व सरसता से मनोग्राह्य कर दिया है।

बालचरित--इस रूपक में भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का

समायोजन किया गया है—इसीलिए इसका नाम बालचरित रखा गया है। इस रूपक में शृंगार की घटनाओं का सर्वथा अभाव है। 'शृंगार के विना बाल-लीला' यह भास की प्रतिभा से ही संयोजित हुआ है। राधा का भी प्रवेश इसमें नहीं हुआ है। यह रूपक पाँच अङ्कों में सम्पन्न होता है।

इस नाटक की कथा का मूल स्रोत श्रीमद्भागवत एवं महाभारत के हरिवंश एवं पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण-कथा है। कथावस्तु को नाटकीय स्वरूप प्रदान करके अपनी काव्य-प्रतिभा, कल्पना एवं मौलिक उद्भावना के साथ अतिशय रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। भास ने गोप की पुत्री को मृत दिखाकर एक अपूर्व वैशिष्टय समाहित किया है। मृतपुत्री को परित्याग करने वाला पुत्री के स्थान पर दैवगति से पुत्र को प्राप्त कर ले, इससे अधिक सौभाग्य की बात क्या होगी। श्वासगति के अवरोध से मृत घोषित की गई यदि श्वास-सञ्चार से पुनः जीवित हो गयी तो योगमाया के लिए क्या आश्चर्य है। वासुदेव और नन्दबाबा की वार्ता भी नाटक में एक विशिष्ट स्थान रखती है। नाटककार की दृष्टि में कृष्ण सातवाँ पुत्र है, आठवाँ नहीं। नाटक की दृष्टि से कथा में क्रम-भेद भी किया गया है, श्रीकृष्ण को नन्द को समर्पण के समय रात्रि का पर्यवासन है। मथुरा में आगमन के समय सभी निद्रानिमग्न हैं। गोपकुमारियों को श्रीकृष्ण के पराक्रम के विश्लेषण के प्रसंग में अपनी कल्पना का अतिशय चमत्कृत रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ रूपक एक अनूठा और अतिशय चमत्कृति-सम्पन्न है।

अभिषेक—इस रूपक में सुग्रीव और अभिषेक का वर्णन किया गया है, अतः, इसका नाम अभिषेक किया गया है। रामायण की कथा कतिपय प्रातिभ परिवर्तनों के साथ लोक के सम्मुख राम के उदात्त चरित्र की अवतारणा की गई है।

इसकी कथा का आधार वाल्मीकीय रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से लेकर लङ्काकाण्ड के उत्तरार्द्ध की कथा है। कथा बहुचर्चित एवं सकलजन-विदित है। रामायण की मूल कथा में परिवर्तन भी किया गया है। सुग्रीव और बालि का द्वन्द्व युद्ध एक ही बार प्रदर्शित किया गया है। प्रचलित कथा के अनुसार नल

नील के द्वारा समुद्र बन्धन हुआ है किन्तु महाकवि ने भयभीत वरुण देव के द्वारा समुद्र के जल को सुखाकर बीच से मार्ग दिया है। भास के अनुसार जटायु से समाचार जानकर हनुमान ने समुद्र पार किया था, राम से सुग्राव के मिलने से पूर्व भेंट नहीं होती है। तारा उसे मरते हुए नहीं देखती है। इस नाटक में छ अङ्क हैं। सीताहरण के बाद की कथा इसमें ली गई है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—यह नाटक स्वप्नवासवदत्तम् का पूरक है अतः इसका विशिष्ट परिचय प्रदान करना उचित प्रतीत होता है। यह एक सफल रूपक है। इस नाटक में चार अङ्क हैं। इसकी शैली हृदयाकर्षक है। कथा के विन्यास में किसी प्रकार का गतिभङ्ग नहीं है। सूच्य भागों का सन्निवेश अतिशय लावण्यावान से अंकित किया गया है। मनोवैज्ञानिक ढङ्ग पर कर्तव्य की कसौटी पर विशुद्ध चरित्र इसमें दिये गये हैं, जिनका आद्यन्त निर्वाह करने में महाकवि सर्वथा सफल है। आत्मविश्वास का सम्बल नीति के प्रसार में आरोह अवरोह क्रम से सन्निविष्ट है। इस नाटक का नाम इसकी विशेष घटनाओं के आधार पर दिया गया है। प्रद्योत ने वत्सराज को बन्दी बना लिया है, इसकी अवगति होते ही अमात्य योगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है—यदि वत्सराज को मैं नहीं छुड़ा लेता तो मेरा नाम योगन्धरायण नहीं। इस प्रतिज्ञा के सफल होने से पूर्व ही नवीन घटना प्रस्तुत होती है—उदयन बन्दीगृह से वासवदत्ता को लेकर हो भागना चाहता है। इस वृत्तान्त को जानकर पुनः प्रतिज्ञा करता है—जिस प्रकार अर्जुन सुभद्रा का हरण किया था, उसी प्रकार वासवदत्ता का हरण नहीं कराया तो मेरा नाम योगन्धरायण नहीं। इन प्रतिज्ञाओं से अतिरिक्त वह प्रतिज्ञा करता है कि घोषवती वीणा, भद्रवती हस्तिनी एवं वासवदत्ता का हरण नहीं करा देता तो मेरा नाम योगन्धरायण नहीं। इन्हीं प्रतिज्ञाओं के कारण इसका नाम प्रतिज्ञायोगन्धरायण है।

रूपक की कथावस्तु का मूल गुणाढ्य की बृहत्कथा की, उदयन और वासवदत्ता की प्रेम कथा है। कथा-सरित्सागर में रुमण्वान् और योगन्धरायण मन्त्रियों के नाम हैं, जो यहाँ भी गृहीत हैं। राजा वासुकि द्वारा दी गई घोषवती वीणा के मधुर स्वरों से मदोन्मत्त हाथियों को अपने अधीन करता था। किसी वृद्ध

कुल की कन्या के साथ इसका विवाह सम्पन्न करना चाहता था। वासवदत्ता गुणसम्पन्न एवं उच्च कुल-प्रसूता कन्या थी। महासेन प्रद्योत विरोधी होने से उदयन से वासवदत्ता का विवाह सम्भव नहीं था। उदयन वनों में हाथियों को अधीन करने के लिए विचरण करता रहता था। प्रद्योत ने सोचा कि उदयन को पकड़ कर ले आने के बाद वासवदत्ता का शिक्षक बनाकर उसके साथ प्रेम हो जाने पर उसको अपना अधिकृत जामाता बना लूँगा। एक नीलहस्ती के समान कृत्रिम हाथी का निर्माण कराकर योद्धाओं को उसमें छिपाकर विन्ध्याचल के अरण्य में रखवा दिया। नीलगिरिहस्ती की सूचना प्राप्त कर उसको पकड़ने के लिए जाता है और वह बन्दी बना लिया जाता है और वह संगीत शिक्षक के रूप में रहने को बाध्य होता है। दोनों का प्रेम प्रगतिशील होता है। यौगन्धरायण रुमण्वान् आदि मन्त्रियों पर राज्य-रक्षा का भार समर्पित कर वसन्तक के साथ वत्सराज को मुक्त कराने के लिए चल पड़ता है। और उदयन को वासवदत्ता के साथ ले आता है।

महाकवि भास के नाटक में अनेक परिवर्तनों के साथ अतिशय रोचक शैली में इसे प्रस्तुत किया गया है। पूर्वप्रदर्शित प्रतिज्ञाएँ कवि की प्रातिभ कल्पना-प्रसूत है। उदयन के उदात्त चरित्र की रक्षा के लिए प्रद्योत की सेना के साथ उदयन युद्ध करता है। उदयन का घोड़ा एक पैर पर खड़ा हुआ थककर गिर जाता है और सैनिकों से बन्दी बना लिया जाता है। महाकवि की यह कल्पना नाटक की दृष्टि से अतिशय महत्त्वाधायक है। महाकवि की कल्पना के अनुसार हंसक उदयन के साथ जाता है और लौटकर बन्दी बनाने की सूचना देता है। कवि की कल्पना के अनुसार उदयन को शक्तिशाली और सेना को शक्तिहीन सिद्ध किया है, यौगन्धरायण जादूगर के रूप में अपना वेश परिवर्तन नहीं करता है, अपितु द्वैपायन व्यास से प्रदत्त चमत्कारी वस्त्र के आधार पर वेश परिवर्तन होता है। नाटककार ने रुमण्वान् और वसन्तक को भी सहायक के रूप में भेजा है। और उदयन के साथ वासवदत्ता के प्रेम को भी अभिव्यक्त किया है जिससे कथा में जीवनी शक्ति का सञ्चार होता है।

यह एक सफल तथा उन्नत कोटिका नाटक है। इस नाटक की रचना में महाकवि की कवित्वशक्ति निखार पर व्यक्त होती है और महाकवि को उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करती है। अब उनके शेष नाटकों का परिचय प्रदान कर स्वप्नवासवदत्तम् का नाटकीय वैशिष्ट्य प्रस्तुत किया जायगा।

अविमारक—सौवीर राजपुत्र अविमारक का चरित्र इस रूपक में वर्णित किया गया है। विष्णुसेन नाम होने पर अविरूपधारी असुर को मारने से यह अविमारक नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकरण रूपक में छ अङ्क हैं। इसकी कथा कवि कल्पना-प्रसूत है।

राजकुमार अविमारक और राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी की प्रेमलीला का वर्णन इसमें उपलब्ध है। अविमारक काशीराज की पत्नी सुदर्शना से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुआ है। सुदर्शना ने इसे सौवीरराज की पत्नी अपनी बहन सुलोचना को दे दिया था, अतिशय क्रोधी भार्गव के शाप से चाण्डालत्व प्राप्त सौवीरराज अपने परिवार के साथ प्रच्छन्न रूप में कुन्तिभोज की नगरी में निवास करता था।

कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी उद्यान में घूमने गई थी वहीं उन्मत्त हाथी से अविमारक ने इसकी रक्षा की थी, इस पराक्रम प्रदर्शन से कुरंगी और अविमारक में प्रेम हो जाता है। काशीराज का दूत कन्या माँगने आता है। सौवीरराज और काशीराज दोनों ही कुन्तिभोज के बहनोई थे, वह दुविधा में पड़ जाता है, काशीराज के दूत का वह प्रत्याख्यान नहीं करता है। कुरंगी और अविमारक की स्थिति परस्पर प्रेम के कारण दयनीय होती जा रही है। उसकी सखी नलिनिका धायी के साथ अविमारक का पता लगाने निकल पड़ती है और अविमारक को अन्तःपुर में आनेका आमन्त्रण दे आई। अपने पराक्रम पर विश्वास करता हुआ उसने इसे स्वीकार कर लिया।

अविमारक अन्तःपुर में छिपकर प्रविष्ट होता है। कुरंगी सो रही है। अविमारक उसी के पास बैठा है, अविमारक उसका आलिङ्गन करता है, चरित्र-पतन के भय से कांप जाती है, शान्त कर उसे शयनागार में ले जाता है।

इस प्रकार एक वर्ष प्रेमपूर्वक व्यतीत होता है, राजा सूचना से अविगत होता है। पकड़ाने के भय से वह निकल भागता है। वियोग से व्यथित वह आत्मघात के विषय में सोचता है। आत्महत्या के प्रसङ्ग में सस्त्रीक विद्याधर से भेंट होती है, सभी बातें ज्ञातकर एक अँगूठी देता है, जिसे बायें हाथ में धारण करने पर वह अदृश्य और दायें हाथ में धारण करने पर दृश्य हो सकता है। इस अँगूठी के बल पर पुनः प्रविष्ट होने का निश्चय किया।

अविमारक वियोग-सन्तप्ता कुरंगी नलिनिका के साथ राजप्रासाद में बैठी है। अविमारक विदूषक के साथ वहाँ पहुँचता है, अविमारक अत्यधिक प्रसन्न है कुरंगी के दर्शन से। नलिनिका के जाने पर कुरंगी गले में फन्दा लगाकर आत्महत्या करना चाहती है। मेघ-गर्जन से भयभीत कुरंगी का अविमारक आलिङ्गन करता है।

धात्री से ज्ञान होता है कि काशीराजकुमार जयवर्मा अपनी माता सुदर्शना के साथ कुरंगी से विवाह करने के लिए कुन्तिभोज के यहाँ आते हैं। सौवीर राज के उन्हीं के राज्य में निवास करने की सूचना भी प्राप्त होती है। सौवीर राज मिलता है, किन्तु उसका पुत्र नहीं मिलता है। इसी समय देवर्षि नारद उपस्थित होने हैं और अन्तःपुर में कुरंगी के साथ गान्धर्व-विवाह पूर्वक निवास की सूचना देते हैं। कुन्तिभोज देवर्षि के निर्देशानुसार जयवर्मा के साथ कुरंगी की छोटी बहन सुमित्रा के साथ विवाह से चिन्ता मुक्त होता है।

शास्त्रीय दृष्टि से इसमें न्यूनता होने पर भी यह प्रकरण रोचक है।

प्रतिमा—इस नाटक की कथावस्तु इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं के प्रतिमा निर्माण की घटना से ली गई है। दशरथ की प्रतिमा को देखने से ही उनकी मृत्यु का परिज्ञान हो जाता है। सभी घटनाएँ इसी पर आधृत हैं। राम के वनवास का बोध भी भरत को इसी घटना से होता है। इस नाटक में सात अङ्क हैं। राम के युवराज पद पर अभिषिक्त होने से आरम्भ कर चौदह वर्षों का वनवास व्यतीत करने के बाद अयोध्या में लौटने तक की घटना इसमें सन्निविष्ट है। राम के राज्याभिषेक के बाद यह नाटक समाप्त होता है। इस नाटक की कथा रामायण

से गृहीत है। नाटकीयता और रस आदि की दृष्टि से इसमें परिवर्तन किया गया है।

कवि की प्रातिभ कल्पना

(१) वल्कल परिधान कवि की कल्पना है। राम के मधुर गार्हस्थ्य जीवन के परिपोष की दृष्टि से यह प्रसङ्ग चारुतर हो गया है।

(२) राज्याभिषेक के अवसर पर शत्रुघ्न अयोध्या में ही उपस्थित है।

(३) नाटक के द्वितीय अङ्क में मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए दशरथ के सम्मुख उनके पूर्वजों की उपस्थिति प्रदर्शित की गई है।

(४) प्रतिमागृह की चर्चा कवि की कल्पना की देन है। भवभूति के उत्तररामचरित में चित्र-कल्पना पर इसका प्रभाव माना जा सकता है।

(५) मायामृग की कल्पना न कर नाटक की सजीवता की दृष्टि से काञ्चन-पार्श्व मृग की कल्पना की गई है और दशरथ के श्राद्ध के प्रसङ्ग में इस मृग के अन्वेषण के लिए राम को सीता से दूर हटाया गया है। रावण ने उपस्थित होकर अपने को श्राद्धकल्प चेतस् कहा है। श्राद्ध में सर्वोत्कृष्ट वस्तु की सूचना के प्रसङ्ग में काञ्चनपार्श्व मृग के द्वारा विहित श्राद्ध को सर्वोत्कृष्ट बताया है। रावण के सङ्केतानुसार मृग को पकड़ने के लिए जाना सीताहरण के लिए समीचीन अवसर की प्राप्ति है।

(६) सुमन्त्र का दण्डकारण्य-गमन और सीताहरण की सूचना—यह कवि की प्रातिभ कल्पना है। दुःखित भरत के द्वारा माता कैकेयी को उपालम्भ देने पर चौदह दिनों के बदले चौदह वर्ष का वनवास भ्रमवश कहा गया था। रावण के युद्ध में भरत की सेना की यात्रा भी कवि की कल्पना है। राम का राज्याभिषेक जन-स्थान में होता है। रावण-विजय के विजय लिए सैन्य के साथ भरत भी वहीं उपस्थित होते हैं और रावण-विजय के समाचार से प्रसन्नता एवं कैकेयी की अनुमति से रामराज्य ग्रहण करने के लिए तैयार होते हैं और राज्याभिषेक होता है।

इस नाटक में करुण तथा वीर रस का सम्मिश्रण है, करुण की प्रधानता

है। दशरथ की प्रतिमा दर्शन से ही भरत मूर्च्छित होता है और राम के सम्मुख भरत के द्वारा अपने लिए निर्घृण शब्द का प्रयोग अतिशय चित्तद्रुति का सम्पादक है।

स्वप्नवासवदत्त की कथावस्तु

पुरुवंश में उत्पन्न उदयन वत्सदेश का राजा था। वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी थी। उदयन वीणा-वादन-कला में निपुण था। उसके पास घोषवती नाम की एक वीणा थी जिसकी सहायता से वह मदमत्त हाथियों को भी वश में कर लेता था। वत्सराज्य की सीमा से ही सटा हुआ अवन्तिराज्य था जहाँ का राजा प्रद्योत था। प्रद्योत अपने प्रकृष्ट सैन्यबल के कारण महासेन भी कहा जाता था। एक बार प्रद्योत के सचिव शालङ्कायन ने छलपूर्वक राजा उदयन को हर कर बन्दी बना लिया तथा उसे कारागार में डाल दिया। प्रद्योत की एक पुत्री थी जिसका नाम वासवदत्ता था। वासवदत्ता परमसुन्दरी, सुशील और गुणवती थी। उदयन के कला-कौशल से प्रभावित राजा प्रद्योत चाहता था कि उदयन का विवाह वासवदत्ता से हो जाय। इसी अभिप्राय से उसने उदयन को वासवदत्ता के वीणा-शिक्षक के रूप में नियुक्त कर लिया। वीणा-शिक्षण क्रम में ही वासवदत्ता एवं उदयन एक दूसरे के प्रति आसक्त हो गये। उदयन अवसर पाकर अपने चतुर मंत्री यौगन्धरायण के सहयोग से वासवदत्ता को अपहृत कर कौशाम्बी ले आया। कौशाम्बी आकर उदयन वासवदत्ता में इतना खोया रहता कि उसे राज-कार्य की भी सुध-बुध नहीं रहती थी। उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठाते हुए उसके एक शत्रु आरुणि ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उदयन से उसका राज्य छीन लिया। आरुणि से अपने राज्य को वापस लेने के लिए उदयन के मंत्री यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् किसी शक्तिशाली राजा की सहायता के अन्वेषण में थे। तभी ज्योतिषियों से उन्हें ज्ञात हुआ कि मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती से उदयन का विवाह होगा। राजा उदयन वासवदत्ता को इतना अधिक चाहते थे कि वासवदत्ता के जीवित रहते किसी अन्य स्त्री के प्रति उनका आकृष्ट होना असंभव था। इस जटिलता का अनुभव कर यौगन्धरायण तथा रुमण्वान् ने एक योजना बनाई। मगधराज्य की

सीमा के पास एक गाँव था लावाणक। योगन्धरायण उदयन को वासवदत्ता के साथ आखेट के लिए वहाँ ले गया। एक दिन जब आखेट के लिए राजा उदयन बाहर गया था तो शिविर में आग लगा दी गई और उदयन के लौटने पर उसे बता दिया गया कि वासवदत्ता उसी आग में जल मरी तथा उसे बचाने के प्रयास में योगन्धरायण भी जल मरा। उदयन इस समाचार से बहुत शोकाकुल हुआ। रुमण्वान् आदि मंत्रियों ने उसे सम्भाला और वापस कौशाम्बी ले आये।

उधर योगन्धरायण वासवदत्ता को लेकर मगधराज दर्शक की बहन पद्मावती के पास गया और उसके पास वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रख छोड़ा। उदयन वासवदत्ता की याद में अतिशय विह्वल हुआ किन्तु अन्ततोगत्वा पद्मावती से विवाह करने के लिए वह तैय्यार हो गया। विवाह के बाद दोनों राज्यों की सेनाओं ने मिलकर आरुणि को परास्त कर दिया तथा शत्रु द्वारा अपहृत वत्सराज्य पुनः उदयन को प्राप्त हो गया। अन्त में बड़े ही नाटकीय ढंग से वासवदत्ता और योगन्धरायण प्रकट हुए। योगन्धरायण ने अपने दुस्साहस के लिए उदयन से क्षमा-याचना की पर उदयन ने योगन्धरायण द्वारा किये गये हितकारक कार्यों के प्रति बहुत आभार व्यक्त किया।

प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु का जो भाग वर्णित है उससे सम्पूर्ण कथा-वस्तु पर प्रकाश पड़ता है। महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन यद्यपि नाटक में नहीं किया गया है किन्तु स्थान-स्थान पर उनका समुचित निर्देश दे दिया गया है जिससे सारी कथा-वस्तु स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः यह नाटक घटना-प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान ही है इसीलिए कथा-वस्तु के महत्त्वपूर्ण अंशों की भी अपने नाटकीय स्वरूप की रक्षा के लिए उपेक्षा की गई है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' नामकरण की सार्थकता

रूपक के दस भेदों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक नामक भेद है और नाटक का नाम ऐसा होना चाहिए जो उस नाटक में घटित किसी विशेष घटना को लक्षित करता हो—"नामकार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्।" साहित्य दर्पण ६।१४८। प्रस्तुत नाटक के पञ्चम अङ्क में इसी प्रकार की एक-विशेष घटना घटती है। पद्मावती से विवाह हो जाने के बाद विदूषक द्वारा

जब उदयन को समाचार मिलता है कि पद्मावती सिर-दर्द से बेचैन है और समुद्रगृह में है तो उदयन उसे देखने समुद्रगृह में जाता है पर तब तक मागधी पद्मावती वहाँ नहीं पहुँचती है इसलिए उदयन पद्मावती की शय्या पर बैठ जाता है और कुछ देर बाद जब उसे नींद आने लगती है तो वह वहीं सो जाता है। विदूषक उसके लिए चादर लाने बाहर चला जाता है। इसी बीच पद्मावती के सिर-दर्द का समाचार पाकर वासवदत्ता उसे देखने के विचार से समुद्रगृह में आती है और चादर ओढ़कर सोये हुए उदयन को पद्मावती समझ कर वह उसके पास ही लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता को देखता और उससे बातें करना प्रारम्भ कर देता है। वासवदत्ता इस स्थिति से पहले तो अचानक घबड़ा जाती है पर यह जान लेने पर कि उदयन स्वप्न में बोल रहा है, वह भी उसकी बातों का जवाब देने लगती है।

उपर्युक्त घटना निश्चित रूप से भास की उच्च कल्पनाशक्ति की परिचायिका है। एक व्यक्ति स्वप्न में बोल रहा हो और दूसरा व्यक्ति जाग्रत् अवस्था में उसकी बातों का उत्तर दे रहा हो, इससे विलक्षण घटना और क्या हो सकती है ? चूँकि घटना की दृष्टि से यह प्रसङ्ग सर्वाधिक हृदयावर्जक है अतः इसी स्वप्न-प्रसंग के आधार पर प्रस्तुत नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा गया जो निश्चय ही सार्थकता का प्रतिपादक है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है—

"स्वप्ने दृष्टा वासवदत्ता, स्वप्नवासवदत्ता, तामधिकृत्य कृतं नाटकं स्वप्नवासवदत्तम्। 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे" (पा० सू० ४।३।८७) से अण्। अथवा "स्वप्ने दृष्टा वासवदत्ता इति स्वप्नवासवदत्ता (शाकपार्थिवादिवत् उत्तरपदलोपिसमासः) सा एव अभेदोपचारात्—स्वप्नवासवदत्तम्।

प्रमुखपात्रों का चरित्र-चित्रण

उदयन

उदयन प्रस्तुत नाटक का नायक है। वह वीणा-वादनकला में निपुण, राज्य-कार्य से निश्चिन्त तथा कोमल स्वभाव का है अतः वह धीर ललित प्रकृति का नायक है—"निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।" प्रथम अङ्क में ब्रह्मचारी के—"इह तया हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह

पर्यु षितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्" इस कथन से पता चलता है कि वासवदत्ता-विरह से व्याकुल उसके हृदय का यह चित्र वासवदत्ता के प्रति उसके अगाध प्रेम को सूचित करता है। उदयन की विरहावस्था का जो वर्णन "नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाकाः" (१।१३) इस पद्य में किया गया है उससे उसके हृदय की संवेदन-शीलता सहज प्रकट हो जाती है।

वह गुणवान् हैं, ब्रह्मचारी द्वारा उदयन की प्रशंसा सुनकर तापसी कहती है—"स खलु गुणवान् नाम राजा य आगन्तुकेनाप्येवं प्रशस्यते।" उदयन अत्यन्त रूपवान् भी है। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा में चेटी कहती है—"ननु शरचापहीनः कामदेवः।" उदयन के हृदय में यद्यपि पद्मावती के प्रति बहुत प्रेम है पर वासवदत्ता को वह भुला नहीं पा रहा है, इस प्रकार दाक्षिण्य गुण भी उसके व्यक्तित्व में विद्यमान है, तभी तो पद्मावती कहती है—"हला मा मैवम्। सदाक्षिण्य एव आर्यपुत्रो य इदानीमपि आर्याया वासवदत्तायाः गुणान् स्मरति।"

अनुपम सौन्दर्य, अद्वितीय कला, कोमल हृदय, अगाध प्रेम आदि विभिन्न विशेषताओं का मञ्जुल सम्मिश्रण उसके चरित्र में विद्यमान है परन्तु उसकी कुछ दुर्बलतायें भी खटकती हैं। राजा के लिए जिस प्रशासनिक क्षमता की अपेक्षा होती है वह प्रायः उसमें नहीं है अतः वह बार-बार शत्रुओं के आक्रमणों का शिकार होता रहता है और शत्रु द्वारा पराजित भी हो जाता है। एक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण राज्य की उपेक्षा करना एक राजा के लिए कर्त्तव्य की दृष्टि से निश्चय ही उचित नहीं है। उदयन के हृदय की दुर्बलता बार-बार प्रकट होती है। पूरे नाटक में वह केवल वासवदत्ता के लिए रोता-तड़पता ही पाया जाता है। प्रेम की दुनियाँ में यह बात भले ही उचित अनुचित न जान पड़े पर कर्त्तव्य के धरातल पर यह सर्वथा शंसनीय नहीं है। प्रस्तुत नाटक में एक प्रेमी के रूप में वह अवश्य सफल रहा है पर एक राजा के रूप में वह असफल ही सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत नाटक का लक्ष्य चूँकि उदयन और वासवदत्ता के प्रणय का वर्णन करना ही है अतः इस दृष्टि से राजा उदयन को नहीं अपितु प्रेमी उदयन को क्षमा किया जा सकता है।

वासवदत्ता

वासवदत्ता प्रस्तुत नाटक की नायिका है। नाटक के आदि से लेकर अन्त तक वासवदत्ता के चरित्र में हमें केवल आदर्श ही आदर्श के दर्शन होते हैं। यदि उदयन के चरित्र से वासवदत्ता के चरित्र की तुलना की जाय तो निश्चय ही वासवदत्ता केवल वीस नहीं बल्कि पच्चीस पड़ेगी। उदयन के प्रति वासवदत्ता के हृदय में भी अगाध प्रेम है पर वासवदत्ता प्रेम से अधिक कर्त्तव्य को महत्व देती है। उदयन के प्रेम में आसक्ति है पर वासवदत्ता का प्रेम त्याग, बलिदान एवं कर्त्तव्य-बोध पर आश्रित है। वह उदयन के प्रेम में पूर्ण समर्पित है पर उसके हित के लिए वह यौगन्धरायण की योजना को स्वीकार कर उससे कुछ दिनों के लिए अलग हो जाती है। पद्मावती के यहाँ रहती हुई वह हमेशा अपने शील का परिचय देती रहती है। पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाने पर भी वह विषण्ण नहीं होती या कि पद्मावती के प्रति उसके हृदय में कभी भी सौतियाडाह पैदा नहीं होता अपितु पद्मावती को वह बहन की तरह मानती है। विरहावस्था में वह आँसुओं की घूँट पी-पीकर भी अपने कर्त्तव्य-मार्ग से कभी च्युत नहीं होती।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वासवदत्ता के चरित्र में उदारता, महत्ता, शील, संयम, धैर्य और प्रेम का जो सम्मिश्रण है इससे उसका चरित्र नितान्त आदर्शपूर्ण बन गया है। कविवर भास की लेखनी ने वासवदत्ता का जैसा चरित्र प्रस्तुत-नाटक में चित्रित किया है वह एक भारतीय नारी से सच्चे आदर्श की प्रस्तुति में पूर्ण समर्थ है और वासवदत्ता के रूप में आदर्श भारतीय नारी का जो स्वरूप महाकवि ने प्रस्तुत किया है उसके लिए हम महाकवि भास के आभारी हुए बिना नहीं रह सकते।

पद्मावती

पद्मावती मगधराज दर्शक की बहन है। वह अत्यन्त रूपवती है। प्रथम अङ्क में वासवदत्ता उसके रूप की प्रशंसा करती हुई कहती है—"अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।" विदूषक एवं उदयन भी उसके रूप की प्रशंसा करते

हैं। वह मधुरभाषिणी भी है। वासदत्ता उसकी वाणी की प्रशंसा में कहती है—"नहि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा।"

रूपवती और मधुरभाषिणी होने के साथ-साथ वह धर्मप्रिया और उदार भी है। प्रथम अङ्क में ही उसके इन दोनों गुणों का हमें पता चल जाता है जब कि वह तपस्वियों को मनचाही वस्तु मांगने के लिए आमन्त्रित करती है।

ब्रह्मचारी जब उदयन की शोकावस्था का वर्णन करते हुए उसकी मूर्च्छा की बात कहता है तो वह घबड़ा जाती है जिससे उसके हृदय की संवेदनशीलता अभिव्यक्त होती है।

पद्मावती वचन की पक्की और कर्त्तव्य के प्रति सदैव जागरूक रहनेवाली है। वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखने का प्रस्ताव यौगन्धरायण द्वारा रखे जाने पर कञ्चुकी जब आनाकानी करने लगता है तो वह अपने द्वारा करवाई घोषणा का ध्यान रखती हुई झट उसे स्वीकार कर लेती है। धरोहर की रक्षा भी वह अत्यन्त कुशलता के साथ करती है। वासवदत्ता के साथ उसका बर्ताव सहेलियों जैसा ही होता है। राजकुमारी होने का जरा भी दम्भ उसमें नहीं पाया जाता है। विरहव्याकुल उदयन के प्रति उसके हृदय में प्रेम के साथ-साथ सहानुभूति भी कूट-कूट कर भरी हुई है। नाटक के अन्त में वासवदत्ता के प्रकट होने पर वह उसके चरणों में सर झुकाकर अपनी विनयशीलता का परिचय देती है।

इस प्रकार सौन्दर्य, शील, निरभिमानिता, उदारता, सहानुभूति, विनम्रता आदि विविध गुणों से समन्वित पद्मावती का चरित्र निश्चय ही बहुत उत्कृष्ट है।

यौगन्धरायण

यौगन्धरायण उदयन का प्रधान सचिव है। वह राजनीति-निपुण, विवेकशील और व्यवहार-कुशल है। वह हृदय से उदयन का उत्कर्ष देखना चाहता है। वह केवल राजा की हां में हां मिलाने वाला सेवक नहीं है। राजा के हित के लिए वह दुःसाहपूर्ण कार्य भी कर बैठता है। प्रस्तुत नाटक में उसका अवतरण प्रथम अङ्क तथा अन्तिम अङ्क में ही होता है और वह भी बहुत थोड़े

से समय के लिए ही पर पूरे नाटक में उसका प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रस्तुत नाटक के घटना क्रम को यदि गाड़ी का चक्का मान लिया जाय तो यौगन्धरायण को उसकी धुरी के स्थान में ही प्रतिष्ठित करना होगा। वासवदत्ता को प्रेमासक्त उदयन से अलग रखना, पद्मावती के साथ उदयन के विवाह की योजना बनाना, मगधराज की सहायता से आरुणि द्वारा अपहृत अपने राज्य को वापस लेना आदि कई बातें हैं जो यौगन्धरायण के मस्तिष्क की ही उपज हैं। 'मुद्राराक्षस' के अन्तर्गत चन्द्रगुप्त के सन्दर्भ में चाणक्य की जो भूमिका रही है वह भूमिका प्रस्तुत नाटक में यौगन्धरायण की भी है। वह राज्य का एक विश्वस्त, कर्मठ, कर्त्तव्यनिष्ठ, राज्य-भक्त एवं स्वामिभक्त नागरिक तथा सेवक है। घटना-क्रम की दृष्टि से यौगन्धरायण की भूमिका प्रस्तुत नाटक में नितान्त महत्त्वपूर्ण एवं श्लाघनीय है साथ ही आज के युग में राजनीतिक जीवन जीने वालों के लिए बहुत अधिक प्रेरणा-प्रद भी।

भास का नाट्य-कौशल

महाकवि भास संस्कृत नाट्य-साहित्य के प्रवीण पुरोहित हैं। भास के नाटकों में जो विशेषतायें उपलब्ध होती हैं उनका अनुशीलन इस तथ्य को प्रतिपादित करता है कि एक सफल नाटककार के लिए अपेक्षित सारे गुण समवेत रूप से उनमें विद्यमान हैं। कथावस्तु का सम्यक् समायोजन, पात्रों का सजीव चित्रण, रसानुकुल अलङ्कारों का निबन्धन, अभिनय का सौकर्य, कथोपकथन की अत्यन्त सरल शैली, भावों की स्फुट अभिव्यक्ति आदि विविध मानदण्डों के आधार पर भास संस्कृत नाटककारों की पङ्क्ति में अन्यतम स्थान पर सुप्रतिष्ठित हैं।

भास के नाटकों के पात्र जीवन की गहनतम व्यावहारिक अनुभूतियों एवं हृदय की संवेदनाओं को प्रकट करने में पूर्ण समर्थ हैं। स्वप्नवासवदत्त का उदयन यदि प्रेम के प्रति आत्यन्तिक समर्पण का प्रतीक है तो वासवदत्ता उसी प्रेम के लिए उत्कृष्ट त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति है। पद्मावती यदि आदर्श की प्रतीमा है तो मंत्री यौगन्धरायण कर्त्तव्यनिष्ठता का देदीप्यमान मूर्ति है। विदूषक तो पाठकों-दर्शकों को हास्य की वह मीठी बुकनी परोसता रहता है

जिस पर गम्भीर से गम्भीर लोगों की भी सारी गम्भीरता हजार जान से निछावर हो जाती है। तो यह है भास की उत्कृष्ट चरित्रचित्रण-निपुणता का भव्य निदर्शन।

भास अत्यन्त भावुक कवि हैं। किसी कवि की भावुकता का पता लगाना हो तो यह देखना चाहिए कि कवि अपनी कृति में मार्मिक स्थलों को कहां तक पहचान सका है। भास इस क्षेत्र में पूर्ण सिद्धहस्त हैं। विरह-व्याकुल उदयन की मनोव्यथा के वर्णन में कवि ने अपनी मर्मज्ञता का जो परिचय दिया है वह नितान्त हृदयावर्जक है—

"नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाकाः, नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता, भर्तृस्नेहात् सा च दग्धाऽप्यदग्धा ॥"

(स्वप्न० १३।१)

उपर्युक्त पद्य के "नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाकाः" इस पङ्क्ति में उदयन की जिस दशा का वर्णन किया गया है वह निश्चय ही किसी भी सहृदय के हृदय में करुणा का सञ्चार करने के लिए पर्याप्त है। इसी प्रकार षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ में घोषवती वीणा को उपालम्भ देते हुए उदयन द्वारा कहे गये निम्न पद्य भी मार्मिक भावों की अभिव्यञ्जना में नितान्त सफल रहे हैं—

"श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ (६।१)
श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥"

(६।२)

तथा,

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ (६।३)

तृतीय पद्य के "तां तु देवीं न पश्यामि" से जो विकलता टपक रही है उसे यदि मार्मिकता की पराकाष्ठा कहें तो प्रायः अत्युक्ति नहीं होगी।

प्रस्तुत नाटक में कवि ने यदि एक ओर उदयन की मनोव्यथा का मार्मिक वर्णन किया है तो दूसरी ओर वासवदत्ता तथा पद्मावती के आदर्शपूर्ण स्वरूपों का भी प्रभावोत्पादक प्रतिपादन किया है। वासवदत्ता एवं पद्मावती की चारित्रिक विशेषताएँ इसी निष्कर्ष को जन्म देती हैं कि कवि के विशाल हृदय में नारी–जाति के लिए अत्यधिक समादर भाव है और आदर्श भारतीय नारी की गरिमा को परखने की जो दृष्टि होती है उस दृष्टि से भास पूर्णतः सम्पन्न हैं। यौगन्धरायण के माध्यम से कवि ने अपनी राजनीतिज्ञता एवं व्यवहार-कुशलता का परिचय दिया तथा विदूषक के माध्यम से संस्कृत साहित्य-जगत् में प्रचलित "भासो हासः" के कथन को सार्थकता भी प्रदान की।

छन्दों एवं अलङ्कारों के समुचित प्रयोग में तो महाकवि भास निपुण हैं ही, नाटक में प्रयुक्त छोटे-छोटे संवाद-वाक्य भी नाटक की अभिनेयता की श्रीवृद्धि करने के लिए पर्याप्त हैं। भाषा सरल एवं प्रवाहमयी है। भाषा के अन्तर्गत स्थान-स्थान पर कतिपय अपाणिनीय प्रयोग यद्यपि खटकते तो हैं पर इसमें महाकवि का कोई दोष नहीं है। पाणिनि से पूर्ववर्ती कवि की भाषा में यदि कुछ अपाणिनीय प्रयोग मिल भी जायँ तो यह कुछ असम्भावित अनौचित्य नहीं है। अपि च, भावों का प्रणेता यदि भाषागत स्खलन के चक्रव्यूह में यदा कदा घिर भी जाय तो इसे ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए।

निष्कर्ष के रूप में महाकवि भास की चामत्कारिक प्रतिभाशक्ति, असाधारण वैदुष्य तथा विलक्षण नाट्यकौशल विद्वानों तथा सहृदय सामाजिकों के लिए निश्चय ही श्रद्धा एवं समादर के विषय हैं।



पात्र-परिचय

पुरुषपात्र

राजा	: वत्सदेश का राजा उदयन ।
यौगन्धरायण	: उदयन का मुख्यमंत्री ।
रुमण्वान्	: उदयन का दूसरा मंत्री ।
विदूषक	: वसन्तक नामक उदयन का मित्र (नर्म सचिव) ।
ब्रह्मचारी	: लावाणक ग्राम का निवासी छात्र ।
प्र० काञ्चुकीय	: मगध के राजप्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।
द्वि० काञ्चुकीय	: उज्जयिनी के राजप्रासाद में अन्तःपुर का अधिकारी ब्राह्मण ।
संभषक, भट	: पद्मावती के भृत्य ।

स्त्रीपात्र

वासवदत्ता	: उदयन की प्रथम पत्नी, गुप्तवेश में यही आवन्तिका है ।
पद्मावती	: मगधराज दर्शक की बहन, उदयन की द्वितीय पत्नी ।
तापसी	: मगधराज्य के तपोवन में रहने वाली तपस्विनी ।
अङ्गारवती	: प्रद्योत की रानी, वासवदत्ता की माता ।
मधुकरिका	: पद्मावती की सखी एवं परिचारिका ।
पद्मिनिका	: ,, ,, ,,
धात्री	: पद्मावती की उपमाता ।
वसुन्धरा	: वासवदत्ता की उपमाता ।
विजया	: वत्सराज की प्रतिहारी ।



विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

स्वप्नवासवदत्तम्

सटिप्पण 'कमलेश्वरी' संस्कृत-हिन्दी-व्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः ।)

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥ १ ॥

नान्द्यन्ते = नाटकमङ्गलाचरणान्ते । सूत्रधारः = प्रधाननटः

अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ, आसवदत्ताबलौ, पद्मावतीर्णपूर्णौ, वसन्तकम्रौ, बलस्य, भुजौ, त्वाम् पाताम् ॥ १ ॥

व्या०—उदयनवेन्दुसवर्णौ = उदीयमाननूतनचन्द्रसदृशवर्णौ । आसवदत्ताबलौ=मद्यार्पितसामर्थ्याऽभावौ, मद्यपाननिर्बलाविति भावः । पद्मावतीर्णपूर्णौ = कमलाऽवतरणसम्पन्नौ, कमलसदृशसुकुमाराविति भावः । वसन्तकम्रौ = मधुमासवत्कमनीयौ । बलस्य = बलरामस्य । भुजौ = बाहू । त्वाम् = युष्मान् सभ्यानित्याशयः । पाताम् = रक्षताम् । पद्येऽस्मिन् पदविन्यासचातुर्येण उदयनवासवदत्तापद्मावतीवसन्तकानां प्रधानपात्राणां सूचनान्मुद्रालङ्कारः । तल्लक्षणं हि—
"सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः" इति । आर्याछन्दः ॥ १ ॥

टिप्पणी—नवश्चाऽसौ इन्दुः (कर्मधारय समासः), तेन समानो वर्णो ययोस्तौ (बहु०) = उदयनवेन्दुसवर्णौ । आसवेन दत्तम् (तृ० त०), बलस्य अभावः अबलम्, 'अव्ययं विभक्तीत्यादिनाऽव्ययीभावसमासः, आसवदत्तम् अबलं

(नान्दी के बाद सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—उदयकालिक चन्द्रमा के समान वर्णवाली, मद्यपान से निर्बल लक्ष्मी (अथवा कमल) के प्राकट्य से समृद्ध, वसन्त ऋतु के सदृश सुन्दर बलराम की भुजाएँ आपकी रक्षा करें ॥ १ ॥

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अङ्ग ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥ २ ॥

ययोस्तौ (बहु०)=आसवदत्ताबलौ । अव+'तॄ प्लवनसंतरणयोः' 'नपुंसके भावे क्तः' इत्यनेन क्तः = अवतीर्णम् , पद्मायाः अवतीर्णम् (ष० त०) तेन पूर्णौ (तृ० त०) = पद्मावतीर्णपूर्णौ । 'कमु कान्तौ' धातोः 'नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः' इति सूत्रेण र प्रत्यये कृते कम्र इति, वसन्त इव कम्रौ (उपमानपूर्वपदकर्मधारयसमासः) = वसन्तकम्रौ । 'पा' रक्षणे+लोट् = पाताम् ।

आर्यमिश्रान्=माननीयसज्जनान् । 'महाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जनसाधवः' इत्यमरः । मिश्रशब्दो माननीयताद्योतकः । विज्ञापयामि=निवेदयामि । अये=आश्चर्याऽभिव्यञ्जकमव्ययमिदम् । विज्ञापनव्यग्रे=निवेदनोत्कण्ठिते सति । अङ्ग !=भोः । अङ्ग शब्दस्य 'पुन' रित्यप्यर्थः, तद्यथा–'पुनरर्थेऽङ्ग' इत्यमरः ।

उत्सरत=अपसरत, अस्मात्स्थानादिति भाव ।

अन्वयः—मगधराजस्य, स्निग्धैः, कन्यानुगामिभिः, भृत्यैः, सर्वः, तपोवनगतः, जनः, धृष्टम्, उत्सार्यते ॥ २ ॥

व्या०—मगधराजस्य = मगधाधिपस्य, दर्शकस्येति भावः । स्निग्धैः=

माननीय सज्जनों को मैं यह बताता हूँ । अरे ! क्या ? मेरे निवेदन कर्म में व्यस्त होते ही यह कैसी आवाज सुनाई पड़ने लगी ? अच्छा, देखता हूँ ।

(नेपथ्य में)

हटो सज्जनो ! हटो !

सूत्रधार—अच्छा, समझ गया ।

मगधराज के स्नेही एवं राजकुमारी का अनुगमन करने वाले सेवकों द्वारा सभी तपोवनवासी व्यक्ति धृष्टतापूर्वक हटाये जा रहे हैं ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

(प्रविश्य ।)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेशो यौगन्धरायण आवन्तिका वेषधारिणीवासवदत्ता च)

स्नेहयुक्तैः । कन्यानुगामिभिः=कन्यां राजकुमारीं पद्मावतीमनुगच्छन्ति अनुसरन्ति तच्छीलमेषामिति कन्यानुगामिनः, तैः । भृत्यैः=सेवकैः । सर्वः=सकलः । तपोवनगतः=आश्रमवासी । जनः = लोकः । धृष्टम् = बलात्, कठोरतया यथा स्यात्तथेतिभावः । उत्सार्यते=अपसार्यते, दूरीक्रियते इत्यर्थः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥२॥

टिप्पणी—आर्याश्च ते मिश्रास्तान् (क० धा०)=आर्यमिश्रान् । विज्ञापने व्यग्रः, तस्मिन् (स० त०)=विज्ञापनव्यग्रे । वि+ज्ञा+णिच्+लट्+मिप् =विज्ञापयामि । श्रु+कर्मणि लट्=श्रूयते । उत्+सृ+लोट्+थ=उत्सरत । वि+ज्ञा+क्त=विज्ञातम् ।

मगधानां राजा इति मगधराजः (ष० त०), 'राजाहः सखिभ्यष्टच्' इति समासान्तष्टच् प्रत्ययः, तस्य=मगधराजस्य । स्निह्+क्त+भिस्=स्निग्धैः । कन्योपपदपूर्वकाद् 'अनु' इत्युपसर्गपूर्वकाद् 'गम्' धातोः 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इत्यनेन णिनिः, 'उपपदमतिङ्' इत्युपपदसमासः, तृतीयाबहुवचने= कन्यानुगामिभिः । तपसः वनम् (ष० त०), तपोवनं गतः, 'द्वितीयाश्रितातीते' त्यादिना द्वि० त० समासः=तपोवनगतः । धृष्+क्त=धृष्टम् । उत्+सृ+णिच् +कर्मणि लट्=उत्सार्यते ।

(सूत्रधार का प्रस्थान)

स्थापना समाप्त

(प्रवेश करके)

दो रक्षक—हटो हटो सज्जनो ! हटो !

(सन्यासी वेशधारी यौगन्धरायण तथा आवन्तिका वेश में वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्त्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ? कुतः—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो ! निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥३॥

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [आर्य ! क एष उत्सारयति ?]

अन्वयः—धीरस्य, आश्रमसंश्रितस्य, वसतः, वन्यैः फलैः तुष्टस्य, वल्कलवतः, मानार्हस्य, जनस्य, त्रासः, समुत्पाद्यते । भोः, उत्सिक्तः, विनयात्, अपेतपुरुषः, चलैः, भाग्यैः, विस्मृतः, अयम्, कः, निभृतम्, इदम्, तपोवनम्, आज्ञया, ग्रामीकरोति ॥ ३ ॥

व्या०—धीरस्य=धैर्ययुक्तस्य, अचञ्चलचित्तस्येति भावः । आश्रमसंश्रितस्य =तपोवनाश्रितस्य । वसतः=तपोवने वासं कुर्वतः । वन्यैः=अरण्योत्पन्नैः । फलैः= आम्रादिभिः । तुष्टस्य = सन्तोषमवाप्तस्य । वल्कलवतः=वल्कलानि एव वस्त्राणि अस्य इति वल्कलवान्, तस्य वल्कलवतः । मानार्हस्य=समादरयोग्यस्य । जनस्य= लोकस्य । त्रासः=भयम् । समुत्पाद्यते=जन्यते । भोः=भटा इतियावत् । उत्सिक्तः =उद्धतः । विनयात्=नम्रतायाः । अपेतपुरुषः = रहितपुरुषः, त्यक्तविनय इति भावः । चलैः = अस्थिरैः । भाग्यैः=भागधेयैः, धनश्रीरूपविभवैः । विस्मितः = गर्वितः । अयं कः=एषः कः पुरुषः । निभृतम् = शान्तम् । इदम्=पुरो वर्त्तमानम् । तपोवनम् = आश्रमपदम् । आज्ञया = उत्सारणरूपेणादेशेन । ग्रामीकरोति = ग्रामसमतां प्रापयति ॥ ३ ॥

यौगन्धरायण—(कान लगाकर) क्या यहाँ भी हटाया जा रहा है ? क्योंकि धैर्ययुक्त, तपोवन में रहनेवाले, जंगली फलों से तृप्त, वल्कल पहननेवाले, मान के योग्य मनुष्यों को भयभीत किया जा रहा है । अरे ! यह कौन घमंडी चंचल भाग्यों से गर्वित, अविनयी पुरुष इस शान्त तपोवन को अपनी आज्ञा से गाँव बना रहा है ? ॥३॥

वासवदत्ता—आर्य ! यह कौन हटा रहा है ?

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता—अय्य ! ण हि एव्वं वत्तुकामा, अहं वि णाम उत्सारइदव्या होमि त्ति । [आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।]

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अअं परिभवो । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः] ।

यौगन्धरायणः—'भुक्तोज्झित' एव विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या । कुतः—

भवति=माननीये ! अनिर्ज्ञातानि=अपरिचितानि । अवधूयन्ते=तिरस्क्रियन्ते । परिभवः=तिरस्कारः । भुक्तोज्झितः=पूर्वंभुक्तः पश्चात्त्यक्त इति भावः ।

टि०—आश्रमं संश्रितः, 'द्वितीयाश्रितेत्यादिना द्वितीयातत्पुरुषसमासः, तस्य =आश्रमसंश्रितस्य । वन+यत्+भिस्=वन्यैः । अग्रामं ग्रामं करोतीति, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरिच्विः' इति सूत्रेण 'अभूततद्भाव वक्तव्यम्' इति वार्तिकबलेनच्विः=ग्रामीकरोति । उत्+सृ+णिच्+लट्=उत्सारयति । पूर्वं भुक्तः पश्चादुज्झितः, 'पूर्वकालैकसर्वजरत्' इत्यनेन क० वा० समासः, प्रथमस्य च पदस्य पूर्वनिपातः=भुक्तोज्झितः ।

यौगन्धरायण—देवी ! जो धर्म से अपने आपको हटा रहा है ।

वासवदत्ता—आर्य ! मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है । मैं पूछती हूँ—क्या मैं भी हटाई जाऊँगी ?

यौगन्धरायण—देवी ! इस प्रकार बिना पहचाने देवताओं का भी तिरस्कार हो जाता है ।

वासवदत्ता—आर्य ! परिश्रम भी वैसा कष्ट नहीं दे रहा है जैसा कि यह तिरस्कार ।

यौगन्धरायण—आपने इस विषय को भोगकर छोड़ दिया है । इसमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए । क्योंकि—

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥ ४ ॥

अन्वयः—पूर्वम्, त्वया, अपि, एवम्, गतम्, अभिमतम्, आसीत् । पुनः, भर्त्तुः, विजयेन, श्लाघ्यम् , गमिष्यसि, कालक्रमेण, परिवर्त्तमाना, जगतः भाग्य-पंक्तिः, चक्रारपंक्तिः, इव गच्छति ॥ ४ ॥

व्या०—पूर्वम्=पुरा । त्वयापि=भवत्यापि, वासवदत्तयापीति भावः । एवम्=ईदृशम् । अभिमतम्=इष्टम् । गतम्=प्रस्थितम् । आसीत्=अभवत् । पुनः=भूयः । भर्त्तुः=पत्युः, उदयनस्येतिभावः । विजयेन=राज्यप्राप्तिरूपलक्षणेन । श्लाघ्यम्=प्रशंसनीयम् । गमिष्यसि=यास्यसि । कालक्रमेण=प्रतिकूलानुकूलसमयानुसारेण । परिवर्त्तमाना=परिभ्रमन्ती । जगतः=लोकस्य । भाग्यपंक्तिः=दैवपरम्परा । चक्रारपंक्तिरिव=चक्रस्य रथाङ्गस्य अराणां नेमिकाष्ठानां पंक्तिः श्रेणिरिव । गच्छति=व्रजति । यथा चक्रारपंक्तिः ऊर्ध्वमधश्च गच्छति तथैवलोकस्य शुभाशुभानि भाग्यानि कालक्रमेण परिवर्तन्त इत्याशयः तदुक्तं हि 'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।' अत्र 'चक्रारपंक्तिरिवेत्यंशे लुप्तोपमा, पूर्वार्धप्रतिपादितविशेषार्थस्योत्तरार्धप्रतिपादितेन सामान्यार्थेन समर्थनादर्थान्तरन्यासः, उभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ४ ॥

टि०—गम्+क्त=गतम् । अभि+मन्+क्त=अभिमतम् । बिभर्तीति भर्त्ता, तस्य,='डुभृञ् धारण पोषणयो'+तृच्=भर्त्तुः । वि+जि+अच्+टा=विजयेन । परि+'वृतु वर्त्तने'+लट्+शानच्+मुक्+टाप्=परिवर्त्त-माना ।

पहले तुम भी इसी प्रकार जाया करती थी । पति के विजय प्राप्त कर लेने पर पुनः श्लाघनीय रूप से जाया करोगी । समय के बदलने से संसार की परि-वर्तन शील भाग्यरेखा पहिये के अरों की भाँति चलती है ॥ ४ ॥

भटौ--उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतार्याः ! उत्सरत ।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः---सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

परिहरतु भवान् नृपापवादं, न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥ ५ ॥

उभौ—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

(निष्क्रान्तौ ।)

अन्वयः--भवान्, नृपापवादम्, परिहरतु, आश्रमवासिषु, परुषम्, न प्रयोज्यम् । मनस्विनः, एते, नगरपरिभवान्, विमोक्तुम्, वनम्, अभिगम्य, वसन्ति ॥ ५ ॥

व्या०---भवान्=त्वम् संभषक इत्याशयः । नृपापवादम्=नृपस्य राज्ञो दर्शकस्य अपवादं निन्दाम् । परिहरतु=वर्जयतु । अतः आश्रमवासिषु=तपोवननिवासिषु । परुषम्=निष्ठुरं यथा स्यात्तथा, वचनमिति शेषः । न प्रयोज्यम्=नहि प्रयोक्तव्यम् । यतो हि मनस्विनः=प्रशस्तमानसाः । एते=इमे तपोवनवासिनः । नगरपरिभवान्=पुरसुलभानादरान् । विमोक्तुम्=परिहर्तुम् । वनम्=अरण्यम् । अभिगम्य=अधिगम्य । वसन्ति=वास कुर्वन्ति । वनौकसवृत्तिमाश्रयन्ते इति भावः । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ५ ॥

दोनों रक्षक—हटो सज्जनो, हटो ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी---सम्भषक ! हटाना नहीं चाहिए; नहीं चाहिए । देखो,---आप राजा का अपयश न होने दें । तपोवन में रहने वालों के साथ कठोर व्यवहार नहीं करना चाहिए । ये मनस्वी लोग नगर में होने वाले अपमान से बचने के लिए ही वन में आकर रहते हैं ॥ ५ ॥

दोनों—आर्य ! अच्छा । (दोनों का प्रस्थान)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पाव-स्तावदेनम् ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा ।]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) भोः ! किङ्कृतेयमुत्सारणा ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि ।

काञ्चुकीयः—भोः ! श्रूयताम् । एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम । सैषा नो महाराज-

---

हन्त = हर्षविषय इत्यर्थः । 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः 'इत्यमरः । सविज्ञानम् = विशिष्टज्ञानसहितम्, धर्मनीत्यनुकूलमिति भावः । वत्से = वात्सल्यभाजनभूते, भगिनीति भावः । उपसर्पावः = समीपे गच्छावः । एनम् = काञ्चुकीयम् । किंकृता = केन निमित्तेन कृता । न श्लिष्यते = न संगच्छते । अपरिचयात्=अप्रत्यभिज्ञानात् । महाराजमातरम्=दर्शकस्य जननीम् ।

यौगन्धरायण—अहा, देखने में यह बुद्धिमान् प्रतीत होता है । बेटी ! हम लोग इसके पास चलें ।

वासवदत्ता— आर्य अच्छा ।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) महाशय ! लोगों को किसलिए हटाया जा रहा है ?

कञ्चुकी—हे तपस्वी !

यौगन्धरायण—(स्वगत) तपस्वी शब्द से सम्बोधन करना निश्चय ही गुणयुक्त वार्तालाप है किन्तु जान-पहचान न होने से मेरे मन में यह संगत नहीं हो रहा है ।

कञ्चुकी— श्रीमन् ! सुनिये,—यह हमारे महाराज दर्शक की, जिनका 'दर्शक' नाम गुरुजनों ने यथार्थ ही रखा है; बहन पद्मावती हमारे महाराज की आश्रमवासिनी माता महादेवी से मिलकर पुनः उन पूजनीया की आज्ञा पाकर राजगृह को लौट जायेगी । इस प्रकार आज इसकी इसी आश्रम में रहने की

मातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति । तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः । तद् भवन्तः—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि ।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥ ६ ॥

अनुज्ञाता=आदिष्टा । वासः = अवस्थानम् । अभिप्रेतः = अभीष्टः ।

टि०—परि + हृञ् + लोट् + तिप् = परिहरतु । नृपस्यापवादम् (ष० त०) = नृपापवादम् । प्रयोक्तुंशक्यं प्रयोज्यम्— प्र + युज् + ण्यत्=प्रयोज्यम् । प्रशस्तं मनो येषां ते इति मनस् शब्दात् 'अस्मायामेवास्रजो विनिः' इत्यनेन विनिः = मनस्विनः । विज्ञानेन सहितम् इत्यत्र 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इत्यनेन तुल्ययोग बहुव्रीहिसमासः, 'वोपसर्जनस्ये' त्यनेन सहेत्यस्य स्थाने वैकल्पिकः 'स' इत्यादेशः = सविज्ञानम् । उप + 'सृप्लृ गतौ' + लट् + वस्=उपसर्पावः ।

अन्वयः—तीर्थोदकानि, समिधः, कुसुमानि, दर्भान्, तपोधनानि, वनात्, स्वैरम्, उपनयन्तु । हि, धर्मप्रिया, नृपसुता, तपस्विषु, धर्मपीडाम्, न, इच्छेत्, एतत्, अस्याः, कुलव्रतम् ॥ ६ ॥

व्या०—तीर्थोदकानि = तीर्थस्य पवित्रस्य नद्यादेर्जलानि । समिधः = काष्ठखण्डानि । 'काष्ठंदार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित् स्त्रियाम्' इत्यमरः । कुसुमानि = पुष्पाणि । दर्भान् = कुशान् । तपोधनानि = इमानि तपस्साधनभूतानि । वनात् = अरण्यात् । स्वैरम्=यथेच्छम् । उपनयन्तु = आनयन्तु, भवन्त इति शेषः । हि = यतः । धर्मप्रिया = धर्मानुरागवती । नृपसुता=राजकुमारी, पद्मावतीति भावः । तपस्विषु=तपोधनेषु । धर्मपीडाम्=धर्माचरणव्यवधानम् । न इच्छेत् =

इच्छा है । अतः आप लोग—

लकड़ी, फूल और कुश आदि तपस्या की सामग्री को वन से स्वेच्छापूर्वक ले आवें । राजकुमारी धर्म में रुचि रखनेवाली हैं अतः यह तपस्वियों के धर्म-कार्य में व्यवधान डालना कदापि नहीं चाहेंगी; यह इनका वंशधर्म है ॥ ६ ॥

यौगन्धरायणः—(स्वगतम्) एवम् ! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति । ततः—

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते ।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥ ७ ॥

नाऽभिलषेत् । एतत् = धर्माचरणम् । अस्याः = नृपसुतायाः । कुलव्रतम् = वंशाचरणम्, अस्तीति शेषः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ६ ॥

टि०—तीर्थस्योदकानि (ष० त०) = तीर्थोदकानि । ईरणम् ईरः, 'ईर् गतौ' धातोर्भावे घञ् । स्वेन ईरः, तद्यथा तथा (क्रियाविशेषणम्) = स्वैरम् । अत्र 'कर्तृकरणेकृता बहुलम्' इति तृतीयातत्पुरुष समासः, 'स्वादीरेरिणोः' इति वृद्धिः । उप + नी + लोट्, झि=उपनयन्तु । धर्मः प्रियो यस्याः सा (बहु०) = धर्मप्रिया । तपस् + विनिः + सुप्=तपस्विषु ।

आदेशिकैः=दैवज्ञैः । ये वर्त्तमानभूतभविष्यत्कालिकं कर्म जानन्ति तदाश्रितञ्च शुभाशुभमुद्घाटय तत्प्रतीकारादींश्चोपदिश्य जीविकोपार्जनङ्कुर्वते त एवादेशिकाः । आदिष्टा = सूचिता । स्वामिनो देवी = महाराजस्योदयनस्य महिषी ।

अन्वयः—प्रद्वेषः, बहुमानः, वा, सङ्कल्पात्, उपजायते । भर्तृदाराभिलाषित्वात्, मे, अस्याम्, महती, स्वता ॥ ७ ॥

व्या०—प्रद्वेषः = द्वेषातिशयः । बहुमानः = अत्यादरः । वा = अथवा । सङ्कल्पात् = मनोभावात् । उपजायते = उद्भूयते । भर्तृदाराभिलाषित्वात्=इयं भर्तुः=स्वामिनः उदयनस्य दाराः=भार्या भूयात् इत्यभिलाषवशात् । मे = मम । अस्याम्=पद्मावत्याम् । महती=समधिका । स्वता=आत्मीयता वर्तते इति शेषः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ७ ॥

टि०—पुष्पकश्च भद्रश्चेति (द्वन्द्वसमासः), तौ आदी येषां तैः (बहु०)= पुष्पकभद्रादिभिः । आ + दिश् + क्त + टाप् = आदिष्टा ।

यौगन्धरायण—(मन मे) अच्छा ! तो यही है वह मगध की राजकुमारी पद्मावती जिसके बारे में पुष्पक भद्रक आदि ज्योतिषियों ने बताया था कि महाराज की पत्नी होगी । इस लिए—

अधिक द्वेष या अधिक आदर मन की भावना से ही उत्पन्न होता है । यह

वासवदत्ता—(स्वगतम्) राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ सम्मज्जइ। [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते ।]

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च ।)

चेटी - एदु एदु भट्टिदारिआ इदं अस्समपदं पविसदु। [एत्वेतु भर्तृदारिका इदमाश्रमपदं प्रविशतु ।]

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी ।]

तापसी – साअदं राअदारिआए। [स्वागतं राजदारिकायाः ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) इअं सा राअदारिआ। अभिजणाणुरूव खु से

प्रकृष्टो द्वेषः (गति०)=प्रद्वेषः । बहुश्चासौ मानः (क० धा०)=बहुमानः । उप+जन+लट्+त=उपजायते । भर्तृदारानभिलषितुं शीलमस्येति भर्तृदाराभिलाषी; भर्तृदार+अभि+लष्+णिनिः (उपपद०), तस्य भावस्तत्त्वम्-भर्तृदाराभिलाषित्वम्, तस्मात्=भर्तृदाराभिलाषित्वात् । स्व+तल्+टाप्= स्वता ।

भगिनिकास्नेहः—भगिनी एव भगिनिका, भगिनीतुल्यः स्नेह इति भावः। चेटी=दासी । आश्रमपदम्=आश्रमस्थानम् ।

महाराज की पत्नी होवे इसी इच्छा के कारण इसके प्रति मेरे मन में अत्यधिक आत्मीयता उभड़ रही है ॥ ७ ॥

वासवदत्ता –(स्वगत) 'राजकुमारी' ऐसा सुनकर इसके प्रति मेरा बहन का स्नेह उत्पन्न हो रहा है ।

(चेटी के साथ सपरिवार पद्मावती का प्रवेश)

चेटी—आइए,आइए, राजकुमारी ! इस आश्रम में प्रवेश करें ।

(उसके बाद बैठी हुई तापसी का प्रवेश)

तापसी –राजकुमारी का स्वागत है ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यही वह राजकुमारी है । इसका सौन्दर्य कुलानुरूप ही है ।

रूवं । [इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्]

पद्मावती—अय्ये ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! पविस । तवोवणाणि णाम अहिदिजणस्य सअगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! प्रविश । तपोवनानि नामाऽतिथिजनस्य स्वकं गेहम् ।]

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थह्मि । इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदह्मि । [भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्ताऽस्मि । अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीताऽस्मि ।]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) ण हि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा । [न हि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा ।]

तापसी—भद्दे ! इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोवि राआ ण वरेदि ? [भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ?]

चेटी—अत्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जणीए । सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि । [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः । स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति ।]

अभिजनानुरूपम् = कुलानुरूपम् । रूपम्=सौन्दर्यम् । वागपि = वचनमपि । भगिनिकाम् = स्वसारम् । न वरयति=वरणं न कुरुते । दूतसम्पातम्=सन्देशवाह-

---

पद्मावती—आर्ये ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—चिरकाल तक जीओ । बेटी ! प्रवेश करो, तपोवन तो अतिथियों का अपना ही घर होता है ।

पद्मावती—अच्छा । आर्ये ! मैं आश्वस्त हुई । आपके इस आदर वचन से मैं कृतकृत्य हुई ।

वासवदत्ता—(स्वगत) न केवल रूप ही अपितु इसकी वाणी भी बहुत मधुर है ।

तापसी—भद्रे । क्या कोई राजा हमारे भद्रमुख महाराज की इस बहन की माँग नहीं करता ?

चेटी—उज्जयिनी के राजा प्रद्योत हैं । उन्होंने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है ।

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) भोदु भोदु। एदा अ अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानीं। संवृत्ता:।]

तापसी--अर्हा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स। उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि। [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।]

पद्मावती--अय्य ! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं ? अभिप्पेदप्पदाणेन तवस्सिजणो उवणिमन्तीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति। [आर्य ! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम् ? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् क: किमत्रेच्छतीति ?]

प्रेषणम्। अर्हा=योग्या। महत्तरे=महत्त्वशालिनी, राजकुले इत्यस्य विशेषणम्। श्रूयते=आकर्ण्यते।

टि०--भर्तुः दारिका (ष० त०)=भर्तृदारिका। दूतानां सम्पातः (ष० त०)=दूतसम्पात:, तम्, दूतसम्पातम्। अर्हतीति अर्हा, 'अर्ह पूजायाम्+पचाद्यच्+टाप्=अर्हा।

अभिप्रेतप्रदानेन=अभिलषितवस्तुनो वितरणेन हेतुना। उपनिमन्त्र्यताम्=आहूयताम्। विस्रम्भेण=विश्वासेन, तपस्विनां स्नेहेनेतियावत्। उत्पादितविस्रम्भा=जनितविश्वासा। 'समौ विश्वासविस्रम्भौ' इति कोशः। धर्मार्थम्=धर्माचरणार्थम्।

वासवदत्ता—(स्वागत) बहुत अच्छा। तब तो यह अब अपनी ही हो गई।

तापसी—सचमुच यह आकृति सम्मान के योग्य ही है। सुना जाता है कि दोनों ही राजघराने बड़े ऊँचे हैं।

पद्मावती—आर्य ! अपने को अनुगृहीत करने के लिए कोई तपस्वी दिखाई पड़ा है ? यहाँ कौन क्या चाहता है यह पता लगाकर इच्छानुरूप वस्तु प्रदान की घोषणा के द्वारा तपस्वियों को आमन्त्रित कीजिए।

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या। भो भोः आश्रमवासिनस्तपस्विनः! शृण्वन्तु भवन्तः, इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादित-विस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते।

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत्।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

अर्थेन = देयवस्तुरूपेण हेतुना। उपनिमन्त्रयते = आमन्त्रयते।

अन्वयः—कस्य, कलशेन, अर्थः? कः, यथानिश्चितम्, वासः, मृगयते? दीक्षाम्, पारितवान्, पुनः, गुरोः, यत्, देयम्, भवेत्, किम्, इच्छति? इह, धर्माभिरामप्रिया, नृपजा, आत्मानुग्रहम्, इच्छति। यस्य, यत्, समीप्सितम्, अस्ति, तत्, वदतु, अद्य, कस्य, किम्, दीयताम्? ॥ ८ ॥

व्या०—कस्य = कतमस्य तापसजनस्य। कलशेन=घटेन। अर्थः=प्रयोजनम्। कः = कतमः तपस्वी। यथानिश्चितम् = निर्णयानुसारम्। वासः=वस्त्रम्। मृगयते = अन्विष्यति अभिलषतीति भावः। दीक्षाम् = गुरुगृहवासपूर्वकमध्ययनव्रतम्। पारितवान्=समापितवान्। पुनः = भूयः। गुरोः=आचार्यस्य, आचार्यायेत्यर्थः। यत् = वस्तुजातम्। देयम्=दक्षिणात्वेन दातव्यम्। भवेत् = स्यात्। तादृशं, किम् = वस्तु। इच्छति=अभिलषति। इह = आश्रमे। धर्माभिरामप्रिया=प्रिय-धार्मिकजना। नृपजा=राजसुता। आत्मानुग्रहम्=स्वधन्यताम्। इच्छति = कामयते। यस्य = तपस्विनः। यत्=वस्तु। समीप्सितम् = अभीष्टम्। अस्ति=वर्तते। तत् = वस्तु। वदतु = कथयतु। अद्य = अस्मिन् समये। कस्य = तपस्विनः। किम् = वस्तु। दीयताम् = समर्प्यताम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८ ॥

टि०--निश्चितमनतिक्रम्य (अव्ययीभावस०)=यथानिश्चितम्। 'मृग अन्वेषणे' + लट्=मृगयते। दातुं योग्यम्–'डुदाञ् दाने' + यत्=देयम्। धर्मे अभि-

---

कञ्चुकी—जैसी आपकी इच्छा। हे आश्रमवासी तपस्वियों! आपलोग सुन लें कि यह मगध राजकुमारी आपके द्वारा किये गये स्नेह से आश्वस्त होकर धर्माचरण के लिए आपको दान देने के लिए आमन्त्रित करती हैं—

किसे घट से प्रयोजन है? कौन निश्चय के अनुसार वस्त्र चाहता है?

यौगन्धरायणः—हन्त ! दृष्ट उपायः । (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी ।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तवोवणाभिगमणं । [दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम् ।]

तापसी—संतुट्ठतवस्सिजणं इदं अस्समपदं । आअन्तुएण इमिणा होदव्वं । [सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् । आगन्तुकेनानेन भवितव्यम् ।]

काञ्चुकीयः—भो किं क्रियताम् ?

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा । प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् । कुतः—

रामो येषां ते धर्माभिरामाः (बहुव्रीहि०), ते प्रियाः यस्याः सा (बहु०) = धर्माभिरामप्रिया । नृपाज्जाता—नृप + 'जनी प्रादुर्भावे + 'पञ्चम्यामजातौ' इत्यनेनऽप्रत्ययः=नृपजा । आप्तुमिष्टम् ईप्सितम्, सम्यक् ईप्सितम्=समीप्सितम् ।

हन्त=हर्षाभिव्यञ्जकमव्ययम् । दृष्टः=ज्ञातः । अर्थी=याचकः । दिष्ट्या=भाग्येन । तपोवनाभिगमनम्=आश्रमपर्यटनम् । सन्तुष्टतपस्विजनम् = तृप्ततापसजनम् । आगन्तुकेन=स्थानान्तरादागतेन । अनेन=याचकेन । स्वसा = भगिनी । प्रोषितभर्तृकाम् = प्रवासोषितपतिकाम् । 'नानाकार्यवशाद्यस्याः दूरदेशंगतः पतिः ।

जिसने अपनी निश्चित शिक्षा पूरी कर ली है ऐसा कौन क्या चाहता है जो उसे गुरुदेव को देना है ? धार्मिक जनों के प्रति स्नेह रखने वाली राजकुमारी इस आश्रम में अपना कल्याण चाहती हैं, अतः जो जिसका अभीष्ट है, सो कहे—आज किसे क्या दिया जाये ॥ ८ ॥

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहा ! मुझे उपाय सूझा । (प्रकट) महाशय ! मैं याचक हूँ ।

पद्मावती—सौभाग्य से मेरा तपोवन आना सफल हुआ ।

तापसी—इस आश्रम में सब तपस्वी सन्तुष्ट हैं । यह अवश्य कोई आगन्तुक होगा ।

कञ्चुकी—श्रीमान् ! आपके लिए क्या किया जाय ?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है । इसके पति दूर देश गये हैं । मैं चाहता हूँ कि राजकुमारी इसे कुछ समय तक अपनी देख-रेख में रखें क्योंकि—

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः ।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥९॥

सा मनोभवदुःखार्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका 'इति साहित्यदर्पणे (३–८४)। परि-पाल्यमानाम्=संरक्ष्यमाणाम् ।

टि०--दृश्+क्तः=दृष्टः । अर्थशब्दात् 'अर्थाच्चाऽसन्निहिते' इत्यनेन इनिः =अर्थी । आश्रमस्य पदम् (ष० त०)=आश्रमपदम् । भू+तव्यत्=भवित-व्यम्, भाववाच्ये प्रयोगः । कृ+कर्मणि लोट्+त=क्रियताम् । प्रोषितः भर्ता यस्याः सा (बहु०)=प्रोषितभर्तृका । परिपाल्यत इति परिपाल्यमाना, ताम्, परिपाल+लट्, शानच् (कर्मणि)=परिपाल्यमानाम् ।

अन्वयः—अर्थैः, न, एव, भोगैः, अपि, न, वस्त्रैः, न, कार्यम् । अहम्, वृत्तिहेतोः, काषायम्, प्रपन्नः, न । धीरा, दृष्टधर्मप्रचारा, इयम्, कन्या, मे, भगि-न्याः, चारित्रम्, रक्षितुम्, शक्ता ॥ ९ ॥

व्या०—अर्थैः=धनैः । न एव=प्रयोजनं नैव वर्तते इति भावः । भोगैरपि न =भोग्यार्हवस्तुभिरपि न प्रयोजनम् । वस्त्रैर्न कार्यम्=वासोभिरपि न प्रयोजनम् । अहम्=यौगन्धरायणः । वृत्तिहेतोः=आजीविकार्थम् । काषायम्=कषायरक्त-वसनम्, परिव्राजकवेशमिति भावः । प्रपन्नो न=नाङ्गीकृतवान् । अपितु, धीरा= धैर्यशालिनी पण्डिता वा । 'धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः' इत्यमरः । दृष्टधर्मप्रचारा=सुविज्ञानपुण्याचरणा । इयम्=पुरोवर्तिनी । कन्या= कुमारी, मगधराजपुत्रीति भावः । मे=मम । भगिन्याः=स्वसुः, वासवदत्ताया इति भावः । चारित्रम्=शीलम् । रक्षितुम्=पातुम् । शक्ता=क्षमा, अस्तीति शेषः ॥ ९ ॥

टि०—कृ+ण्यत्=कार्यम् । वृत्तेः हेतुः (ष० त०) तस्मात्=वृत्तिहेतोः । कषायेण रक्तं वस्त्रं तत्=काषायम्—'तेन रक्तं रागात्' इत्यणि आदिवृद्धौ रूपम् । धर्मस्य प्रचारः (ष० त०) दृष्टो धर्मप्रचारो यया (बहु०) सा=दृष्टधर्म-प्रचारा । चर्यते अनेन इति विग्रहे 'चर्' धातोः 'अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः' इत्य-नेन इत्र प्रत्यये–चरित्रम्, चारित्रमेव चारित्रम्–स्वार्थेऽणि ।

धन से मुझे काम नहीं, भोगों और वस्त्रों से मुझे प्रयोजन नहीं है । मैं आजीविका के लिए काषाय वस्त्र धारी नहीं हुआ हूँ । विदुषी और धर्म प्रचार को देखने वाली

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्ययोगन्धरायणो ? होदु, अविआरिअ कमं ण करिस्सदि । [हम् इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः ? भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! महतो खल्वस्य व्यपाश्रयणा । कथं-प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेत् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥ १० ॥

हम् = विषादसूचकमव्ययमिदम् । निक्षेप्तुकामः—न्यासत्वेन अर्पयितुकामः । क्रमम् = विधानम् । 'कल्पे विधिक्रमौ' इत्यमरः ।

व्यपाश्रयणा=आश्रयार्थमभ्यर्थना । प्रतिजानीमः = प्रतिज्ञां कुर्मः ।

अन्वयः—अर्थः, सुखम्, दातुम्, भवेत् । प्राणाः, सुखम्, दातुम्, भवेयुः । तपः, सुखम्, दातुम्, भवेत् । अन्यत्, सर्वम्, सुखम्, दातुं भवेत्, (किन्तु) न्यासस्य, रक्षणम्, दुःखम् ॥ १० ॥

व्या०—अर्थः = द्रव्यम् । सुखम्=सुखपूर्वकं यथा स्यात्तथा । दातुम्= अर्पयितुम् । भवेत्=स्यात् । प्राणाः=असवः । 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः' इत्यमरः । सुखम् = अनायासं यथा स्यात्तथा । दातुम् = समर्पयितुम् भवेयुरितिशेषः । तपः= तपश्चरणम्, तज्जन्यं फलमित्यर्थः । सुखम् = कष्टं विनैव । दातुम् = अर्पयितुम् । भवेत् = स्यात् । अन्यत्=अपरम् । सर्वम्=सकलम् । सुखम्=कष्टं विनैव दातुं

यह कन्या (राजकुमारी) मेरी बहन के चरित्र की रक्षा करने में समर्थ है ।।९।।

वासवदत्ता—(स्वगत) अच्छा ! आर्य यौगन्धरायण मुझे यहाँ छोड़ना चाहते हैं । ठीक है । ये बिना सोचे समझे कोई काम नहीं करेंगे ।

कञ्चुकी—इसकी यह आश्रय-प्रार्थना बहुत कठिन है । कैसे मानें ? क्यों कि—

धन देना सरल है, प्राण देना सरल है, तपस्या के फल को देना भी सरल है । अन्य सब कुछ देना सरल है किन्तु किसी की धरोहर की रक्षा करना बहुत कठिन है ।।१०।।

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्तं दाणि विआरिदुं। जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो । [आर्य ! प्रथम-मुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

चेटी—चिरं जीवदु भट्टिदारिआ एवंसच्च वादिणी । [चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी ।]

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे ! । [चिरं जीवतु भद्रे !]

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा । (उपगम्य) भो ! अभ्युपगतमत्रभवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या ।

भवेदित्याशयः । किन्तु, न्यासस्य=निक्षेपस्य । रक्षणम्=परिपालनम् । दुःखम्= दुष्करम्, कष्टसाध्यं भवतीत्यर्थः । अनुष्टुप् वृत्तम् ।। १० ।।

टि०—निक्षेप्तुं कामो यस्य सः (बहु०) निक्षेप्तुकामः । 'तुंकाममनसो-रपि' इत्यनेन मकारलोपः । वि+अप्+आङ् । 'श्रिञ् सेवायाम्'+युच्+टाप् =व्यपाश्रयणा । (व्यपाश्रयणं व्यपाश्रयणेति) । दा+तुमुन्=दातुम् ।

प्रथमम्=पूर्वम् । उद्घोष्य=उच्चैर्घोषणां कृत्वा । अयुक्तम्=अनुचितम् । भणति=कथयति । भगिनिकान्यासार्थं यद्याचते इत्यर्थः । अनुतिष्ठतु=निष्पादयतु । अनुरूपम्=योग्यम् । अभिहितम्=कथितम् । अभ्युपगतम्=स्वीकृतम् । अनु-

---

पद्मावती—आर्य ! पहले 'कौन क्या चाहता है" यह घोषणा करके अब विचार करना ठीक नहीं । जो यह कहता है उसे आर्य पूरा करें ।

कञ्चुकी—यह आपने अपने अनुरूप ही कहा ।

चेटी—इस प्रकार सत्य भाषण करने वाली राजकुमारी चिरजीवी हों ।

तापसी—भद्रे ! चिरजीवी होओ ।

कञ्चुकी—राजकुमारी, अच्छा । (यौगन्धरायण के पास जाकर) श्रीमन् ! माननीया राजकुमारी ने आपकी बहन का संरक्षण स्वीकार कर लिया है ।

यौगन्धरायणः— अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या । वत्से ! उपसर्पात्र-भवतीम् ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) का गई । एसा गच्छामि मन्दभाआ । [का गतिः । एषा गच्छामि मन्दभागा ।]

पद्मावती—भोदु भोदु । अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता । [भवतु भवतु । आत्मीयेदानींसंवृत्ता ।]

तापसी—जा ईदिसो से आइदी, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि । [या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि ।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि । [सुष्ठु आर्या भणति । अहमप्यनुभूतसुखेति प्रेक्षे ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य ।

गृहीतः=कृतकृत्यः । मन्दभागा=अल्पभाग्या । संवृत्ता=सञ्जाता । तर्कयामि=कल्पयामि ।

सुष्ठु=सम्यक् । अनुभूतं सुखं यथा सा अनुभूतसुखा, निर्विघ्नानन्देति भावः । प्रेक्षे=तर्कयामि । अर्धम्=समांशः । अवसितम्=समाप्तम्, अपगतमिति भावः ।

भारस्य=वासवदत्तानिक्षेपरूपकर्त्तव्यस्य । समर्थितम्=निर्णीतम् । परिणमति=फलति । उपनयतः=महाराजसमीपं प्रापयतः । विश्वासस्थानम्=प्रत्ययाधिष्ठानम्, विश्वासहेतुः, साक्षिणी वेत्यर्थः ।

टि०—उद्+घुष्+णिच्+क्त्वा, ल्यप्=उद्घोष्य । वि+चर+णिच्+तुमुन्=विचारयितुम् । रूपस्य योग्यमिति विग्रहे 'अव्ययं विभक्ती'त्यादिना-

---

यौगन्धरायण—राजकुमारी के द्वारा मैं अनुगृहीत हुआ । बेटी ! देवी के पास जाओ ।

वासवदत्ता—(स्वगत) और क्या चारा है ? यह जाती हूँ अभागिनी ।

पद्मावती—आओ, आओ ! अब तो यह अपनी हो गई ।

तापसी—इसकी जैसी आकृति है इससे मैं समझती हूँ कि यह भी राजकुमारी ही है ।

चेटी—आप ठीक कहती हैं । मुझे भी लगता है कि इसने सुख भोगे हैं ।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहा ! कार्य का आधा भार तो समाप्त हुआ ।

यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतीं मे इहात्रभवती मगधराजपुत्रीं विश्वासंस्थानं भविष्यति । कुतः—

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा ।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥ ११ ॥

ऽव्ययीभाव समासः = अनुरूपम् । अभि + धा + क्त = अभिहितम् । 'दधातेर्हि' रितिह्यादेशः । मन्दो भागो यस्याः, सा (बहु०) = मन्दभागा । उप + नी + लट्, शतृ + ङ स् = उपनयतः ।

अन्वयः—यैः, प्रथमम्, विपत्तिः, दृष्टा, अथ, पद्मावती, नरपतेः, महिषी, भवित्री, (इति) प्रदिष्टा । तत्प्रत्ययात्, इदम्, कृतम् । हि, विधिः, सुपरीक्षितानि, सिद्धवाक्यानि, व्युत्क्रम्य, न, गच्छति ॥ ११ ॥

व्या०—यैः = पुष्पकभद्रादिभिरादेशकैः : प्रथमम् = पूर्वम् । विपत्तिः = राज्यस्खलनरूपा विपदिति भावः । दृष्टा = अवलोकिता, सूचितेत्यर्थः । अथ = अनन्तरम् । पद्मावती = मगधराजपुत्री । नरपतेः = राज्ञः, उदयनस्येति भावः । महिषी = राज्ञी । भवित्री = भाविनो । इति प्रदिष्टा = कथिता । तत्प्रत्ययात् = आदेशिक विश्वासात् । इदम् = न्यासत्वेन वासवदत्तायाः स्थापनम् । कृतम् = विहितम् । हि = यतः । विधिः = दैवम् । सुपरीक्षितानि = सम्यग् विवेचितानि । सिद्धवाक्यानि = सिद्धादेशवचांसि । व्युत्क्रम्य = उल्लङ्घ्य । न गच्छति = न व्रजति ।

मंत्रियों के साथ जैसी मंत्रणा की थी वैसा ही फल हो रहा है । जब महाराज पुनः सत्तारूढ़ हो जायेंगे और मैं वासवदत्ता को उनके पास पहुँचाऊँगा तब देवी मगधराजपुत्री वासवदत्ता के चरित्र की साक्षिणी होगी । क्योंकि—

"पद्मावती महाराज की पत्नी होंगी" ऐसा उन सिद्धों ने कहा है जिन्होंने उदयन पर आने वाली राज्यनाश रूपी विपत्ति को पहले ही सूचित कर दिया था । उन्हीं के विश्वास से हमने यह सब काम किया है क्योंकि सिद्ध पुरुषों के भली प्रकार जांचे गये बचनों का उल्लङ्घन करके भाग्य भी नहीं चलता है ।११।

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः । दृढमस्मि परिश्रान्तः । अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम् । अभितस्तपोवनेन भवितव्यम् । तथाहि—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः ।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥ १२ ॥

सिद्धवचनानुसारेणैव वर्तत इति भावः । अत्र सामान्यार्थेन विशेषार्थसमर्थनादर्थान्तरन्यासालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ११ ॥

ब्रह्मचारी = वर्णिलिङ्गी । विश्रमयिष्ये = विश्रामं करिष्ये ।

टि०—भविष्यतीति भविष्यदर्थे—भू + तृच् + ङीप्=भवित्री । तेषां प्रत्ययः, तस्मात् (ष० त०) = तत्प्रत्ययात् । विधीयतेऽनेनेति विग्रहे विपूर्वकात् धा धातोः 'उपसर्गे धोः कि' रिति कि प्रत्ययः = विधिः ।

अन्वयः—देशागतप्रत्ययाः, अचकिताः, हरिणाः, विस्रब्धम्, चरन्ति । सर्वे, वृक्षाः, पुष्पफलैः, समृद्धविटपाः, दयारक्षिताः । कपिलानि, गोकुलधनानि, भूयिष्ठम् । दिशः, अक्षेत्रवत्यः । हि, धूमः, बह्वाश्रयः । इदम्, निःसन्दिग्धम्, तपोवनम् ॥ १२ ॥

व्या०—देशागतप्रत्ययाः = स्थानप्राप्तविश्वासाः । अचकिताः=भयरहिताः । हरिणाः=मृगाः । विस्रब्धम् = विश्वासपूर्वकम्, निःशङ्कं यथा स्यात्तथेति भावः । चरन्ति=परिभ्रमन्ति । सर्वे = समस्ताः । वृक्षाः=पादपाः । पुष्पफलैः = पुष्पैः फलैश्च । समृद्धाः = सम्पन्नाः । दयारक्षिताः=अनुकम्पया संवर्धिताः । कपिलानि=

(ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी–(ऊपर की ओर देखकर) मध्याह्न हो चला । मैं अत्यन्त थक गया हूँ । अब कहां विश्राम करूं ? (घूमकर) अच्छा ! देख लिया । यह चारों ओर तपोवन ही होगा क्योंकि—

हरिण निर्भिक होकर विश्वासपूर्वक घूम रहे हैं । सभी वृक्षों की शाखायें

ब्रह्मचारी—यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) अये !आ श्रमविरुद्धः खल्वेष जनः । (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र निर्दोषमुपसर्पणम् । अये ! स्त्रीजनः ।

पिङ्गलवर्णानि । 'कडारः कपिलः पिङ्ग-पिशङ्गौ कद्रुपिङ्गले' इत्यमरः । गोकुल-धनानि=धेनुयूथद्रव्याणि । भूयिष्ठम्=बहूनि, प्राचुर्येण वर्त्तमानानि सन्तीति भावः । दिशः=ककुभः, प्रदेशाः इत्यर्थः । अक्षेत्रवत्यः=क्षेत्रपरिहीनाः, सन्तीतिशेषः । हि=यतः । धूमः=यज्ञीयाग्निलिङ्गम् । बह्वाश्रयः=अधिकस्थानापन्नः अस्तीति शेषः । इदम्=पुरोवर्ति । निःसन्दिग्धम्=निश्चयेन । तपोवनम् =आश्रमस्थानम्, वर्तते इति शेषः । अत्र नानासाधनैस्तपोवनरूपसाध्यस्य विच्छित्या परिज्ञानादनुमानालङ्कारः । 'अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात्' इति तल्लक्षणात् । वृत्तं शार्दूलविक्रीडितम् ।। १२ ।।

टि०—वि०+स्रम्भु+क्तः=विस्रब्धम् । आगतः प्रत्ययो येषां, ते (बहु०) =आगतप्रत्ययाः । पुष्पाणि च फलानि च (द्वन्द्व०) तैः=पुष्पफलैः । समृद्धाः विटपाः येषां, ते (बहु०) समृद्धविटपाः । दयया रक्षिताः (तृ० त०)= दयारक्षिताः । गवां कुलानि गोकुलानि (ष० त०), तानि धनानीव, 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इत्यनेन उपमितकर्म समासः=गोकुलधनानि । अतिशयेन बहु इति विग्रहे बहुशब्दात् 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इत्यनेन 'इष्ठन्' प्रत्यये, 'बहोर्लोपो भू च बहो' रिति भू इत्यादेशे, 'इष्ठस्य यिट् च' त्यनेन यिटि कृते=भूयिष्ठम् । बहवः आश्रयाः यस्य, स (बहु०)=बह्वाश्रयः ।

आश्रमविरुद्धः=आश्रमनियमप्रतिकूलः । स्वैरम्=स्वच्छन्दम्, अशङ्कितं यथा स्यात्तथेति भावः । सर्वजनसाधारणम्=सकलजनप्रवेशनीयम् । सन्न्यासः= मदीयो निक्षेपः ।

फल-फूलों से लदी हुई हैं तथा उन्हें अनुकम्पा के साथ पाला-पोसा गया है । कपिला गोधन बहुतायत से हैं । दिक्प्रदेश खेतवाले नही हैं । यह धुआँ भी कई स्थानों से निकल रहा है अतः निश्चय ही यह तपोवन है ।। १२ ।।

ब्रह्मचारी--तो प्रवेश करूँ । (प्रवेश करके) अरे ! ये तो आश्रम के लोग नहीं हैं ! (दूसरी ओर देखकर) यहाँ तपस्वी लोग भी तो हैं । इनके नजदीक जाने में कोई दोष नहीं । अरे ! यहाँ स्त्रियाँ भी हैं !

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

वासवदत्ता—हं ।

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुषसंदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुपरिवालणीओ खु मण्णासो । [अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्नासः ।]

काञ्चुकीयः—भोः पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः ।

ब्रह्मचारी—(आचम्य) भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायणः—भोः! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य ?

ब्रह्मचारी—भोः ! श्रूयताम् ! राजगृहतोऽस्मि ! श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमी लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

निवृत्तपरिश्रमः=अपगतश्रमः । अधिष्ठानम्=निवासस्थानम् ।

राजगृहतोऽस्मि=नृपगृहादागतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थम्=आम्नायवैशिष्ट्यार्थम्, वेदाध्ययनार्थमिति भावः । वत्सभूमौ=वत्सराज्ये । उषितवान्=वासंकृतवान् ।

कञ्चुकी—आप निःशङ्क होकर प्रवेश करें । आश्रम तो सबके लिए बराबर होता है ।

वासवदत्ता—हूं ।

पद्मावती—अहो ! आर्या पर पुरुष को देखना नहीं चाहती हैं । ठीक है, मुझे अपनी धरोहर की रक्षा अच्छी तरह करनी चाहिये ।

कञ्चुकी—महाशय ! हम यहां पहले से हैं । आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें ।

ब्रह्मचारी—(आचमन करके) बहुत अच्छा, अब मेरी थकावट दूर हुई ।

यौगन्धरायण—महाशय ! आप कहां से आये हैं ? कहाँ जाना है ? आपका निवास स्थान कहाँ है ?

ब्रह्मचारी-महाशय ! सुनिये, मैं राजगृह से आ रहा हूँ । वत्सराज्य में

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा ! लावाणअं णाम । लावाणअसङ्कित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे सन्दावो । [हा ! लावाणकं नाम । लावाणकसङ्कीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।]

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता, विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

लावाणकसङ्कीर्त्तनेन='लावाणके'ति नामग्रहणेन । परिसमाप्ता=पर्यवसिता । अनवसिता=अपरिसमाप्ता । अतिदारुणम्=अतिघोरम् । व्यसनम्=दुःखम् ।

टि०- निवृत्तः परिश्रमो यस्य, स (बहु०)=निवृत्तपरिश्रमः । वस+क्त

लावाणक नामक गाँव है । वहां मैं वेद का विशेष अध्ययन करने हेतु कुछ समय तक रहा ।

वासवदत्ता (स्वगत) हाय, लावाणक ! 'लावाणक' नाम लेने से ही मेरा दुःख पुनः नवीन सा हो गया है ।

यौगन्धरायण – क्या अध्ययन समाप्त हुआ ?

ब्रह्मचारी—नहीं समाप्त नहीं हुआ ।

यौगन्धरायण—यदि अध्ययन समाप्त नहीं हुआ तो फिर यहां आने का क्या प्रयोजन है ?

ब्रह्मचारी—वहाँ बड़ी भीषण विपत्ति आ पड़ी ।

यौगन्धरायण—कैसे ?

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नामक राजा रहते हैं ।

यौगन्धरायण—राजा उदयन का नाम सुना है । उन्हें क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम् । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अलिअं अलिअं खु एदं । जीवामि मन्दभाआ । [अलीकमलीकं खल्वेतत् । जीवामि मन्दभागा ।]

यौगन्धरायणः— ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी— ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः ।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति । ततस्ततः ?

वतु=उषितवान् । अनवो नवो यथा सम्पद्यते तथा कृतः, नव+च्वि+कृतः=नवीकृतः । वि+अस्+ल्युट्=व्यसनम् ।

अभिप्रेता=अभीप्सिता । मृगयानिष्क्रान्ते=मृगयार्थं निर्गते सति । अलीकम् असत्यम् ।

अभ्यवपत्तुकामः=परिरक्षितुमिच्छुः । वारितः=निवारितः । सानु

ब्रह्मचारी—अवन्ति राजकुमारी उनकी अतिप्रिया पत्नी थी ।

यौगन्धरायण—होगी । फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर राजा के शिकार के लिए निकल जाने पर वह गाँव में आग लग जाने के कारण जल मरी ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह झूठ है बिल्कुल झूठ । मैं अभागी तो जी रही हूँ ।

यौगन्धरायण - फिर, फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब मंत्री यौगन्धरायण उसे बचाने के लिए उसी आग में कूद पड़ा ।

यौगन्धरायण—हाँ ठीक है, कूद पड़ा । उसके बाद ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोग-जनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं। [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः।

क्रोशत्वम् = दयालुत्वम्।

टि०—मृगयार्थं निष्क्रान्तः, तस्मिन् (सुप्सुपा०) = मृगयानिष्क्रान्ते। अभ्यवपत्तुं कामो यस्य, सः (बहु०) = अभ्यवपत्तुकामः। 'तुं काममनसोरपी' त्यनेन मकारलोपः। अनुक्रोशेन सहितः (तुल्ययोग बहु०) सानुक्रोशः, तस्य भावः = सानुक्रोशत्वम्।

शरीरोपभुक्तानि = देहोपभुक्तानि। दग्ध शेषाणि = पूर्वंदग्धानि ततश्शेषाणि, अवशिष्टानि, अर्धदग्धानि, अग्निना विकृतानीति भावः। आभरणानि = आभूषणानि। परिष्वज्य = आलिङ्ग्य। मोहमुपगतः = मूर्च्छितो जातः। सकामः = सफलाभिलाषः।

ब्रह्मचारी—उसके बाद जब राजा शिकार से लौटे तो इस वृत्तान्त को सुनकर उन दोनों के वियोग में सन्तप्त होकर प्राण-त्याग की इच्छा से उसी आग में कूदकर मरने के लिए तत्पर हो गये किन्तु मन्त्रियों ने बड़े प्रयत्न से उन्हें रोका।

वासवदत्ता—(स्वगत) मैं जानती हूँ। आर्य पुत्र की मुझ पर जो अनुकम्पा है उसे मैं अच्छी तरह जानती हूँ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब वासवदत्ता के पहने हुए अधजले आभूषणों को सीने से लगाकर राजा शोक से बेहोश हो गये।

सर्वे—हा !

वासवदत्ता—(स्वगतम्) सकामो दाणिं अय्यजोअन्धराअणो होदु। [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! रोदिदि खु इयं अय्या । [भर्तृदारिके ! रोदिति खल्वियमार्या ।]

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं । [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

यौगन्धरायणः—अथ किमथ किम् ? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी। ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः ।

पद्मावती—दिट्ठिआ धरइ । मोहं गदो त्ति सुणिअ सूण्णं विअ मे हिअअं । [दिष्ट्या ध्रियते । मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसो-

प्रकृत्या = स्वभावेन । प्रतिलब्धसंज्ञः=सम्प्राप्तचैतन्यः । संवृत्तः = सञ्जातः । दिष्ट्या = भाग्येन । ध्रियते = अवतिष्ठते । शून्यमिव = संज्ञारहितमेव । महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः = भूतलावलुण्ठनधूलिश्वेतरक्त कायः, धूलिधूसरितगात्र इत्यर्थः । प्रलपितवान्=असम्बद्धवचनानि भाषितवान् ।

सभी--हाय ।

वासवदत्ता--(स्वगत) अब आर्य यौगन्धरायण पूर्ण मनोरथ होवें ।

चेटी--राजकुमारी । यह देवी तो रो रही हैं ।

पद्मावती--दयालु स्वभाव की होंगी ।

यौगन्धरायण--हाँ, हाँ । मेरी बहन स्वभाव से ही दयालु है । फिर, फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी--उसके बाद वे धीरे-धीरे होश में आये ।

पद्मावती--(स्वगत) भाग्य से जीवित हैं । 'बेहोश हो गये' यह सुनकर तो मेरा हृदय सूना सा हो गया था ।

यौगन्धरायण--फिर, फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी--फिर जमीन पर लोटने के कारण भूरे शरीर वाले वे राजा

त्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।

टि०—शरीरे उपभुक्तानि (स० त०) = शरीरोपभुक्तानि। पूर्वंदग्धानि पश्चाच्छेषाणि, तानि = दग्धशेषाणि । 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इति पूर्वकाल समासः । प्रतिलब्धा संज्ञा येन (बहु०) सः = प्रतिलब्धसंज्ञः । 'धृङ् उपस्थाने' धातोर्लटि = ध्रियते । मह्याः तलम् (ष० त०) महीतलम्, तस्मिन् परिसर्पणम् (स० त०) = महीतलपरिसर्पणम्, पाटलं शरीरं यस्य स (बहु०) = पाटलशरीरः, पांसुभिः पाटलशरीरः (तृ० त०) = पांसुपाटलशरीरः, महीतलपरिसर्पणेन पांसुपाटलशरीरः (तृ० त०) = महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः ।

अन्वयः—इदानीम्, तादृशाः, चक्रवाकाः, न, एव । स्त्रीविशेषैः, वियुक्ताः, अन्ये, अपि, न, एव । सा, स्त्री, धन्या, याम्, भर्त्ता, तथा, वेत्ति, हि, भर्तृस्नेहात्, सा, दग्धा, अपि, अदग्धा ॥१३॥

व्या०—इदानीम्—अधुना, राज्ञो दुःखावस्थायामिति भावः । तादृशाः = उदयनसदृशाः । चक्रवाकाः = कोकाः, खगविशेषा इति यावत् । 'कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वय नामकः' इत्यमरः । न एव = न वर्त्तन्ते । स्त्रीविशेषैः = सौन्दर्यादिगुणसम्पन्नैः स्त्रीरत्नैः । वियुक्ताः=विरहिताः । अन्येऽपि=अपरेऽपि । तादृशाः = तत्सदृशाः । नैव = नैववर्त्तन्ते । सा = पूर्वोक्ता । स्त्री = नारी ।

एकाएक उठकर "हाय वासवदत्ता ! हाय अवन्ति राजकुमारी ! हाय प्रिये ! हाय प्रिय शिष्ये ।" ऐसा बहुत कुछ बकते रहे । अधिक क्या कहूँ ?—

चकवे भी वैसे दुःखी नहीं हैं और न ही कोई अन्य प्रेमी, जो अपनी विशिष्ट स्त्रियों से वियुक्त हों, वैसे दुःखी हैं । वह स्त्री धन्य है जिसे पति वैसा चाहता है । चूंकि पति का उसके प्रति इतना प्रगाढ प्रेम है अतः वह जल कर भी नहीं जली है ॥ १३ ॥

धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता
भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा ॥ १३ ॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः ! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः ?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम् । स हि

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन् ।

धन्या=सुभगा । याम्=स्त्रियम्, वासवदत्तामिति भावः । भर्ता=पतिः, उदयन इति भावः । तथा=तेन प्रकारेण । वेत्ति=स्मरति । हि=यतः । भर्तृस्नेहात्=पतिप्रणयात् । सा=पूर्वोक्तास्त्री, वासवदत्तेति भावः । दग्धाऽपि=भस्मीकृताऽपि । अदग्धा=न भस्मीकृता । मृतापि अमृतेवेति भावः । विरोधाभासोऽलङ्कारः । शालिनीवृत्तम् ॥१३॥

पर्यवस्थापयितुम्=प्रकृतौ स्थापयितुम् । यत्नवान्=प्रयत्नशीलः ।

टि०—ते इव दृश्यन्ते इति तत्, पूर्वकाद दृशधातोः 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्चे' त्यनेन कनि, 'आ सर्वनाम्नः' इत्यात्वे=तादृशाः । धनं लब्धेति, 'धन' शब्दात् 'धनगणं लब्धा' इत्यनेन यत्प्रत्यये=धन्या । बिभर्तीति, भृञ्+तृच्=भर्त्ता । भर्तुः स्नेहः (प० त०), तस्मात्=भर्तृस्नेहात् ।

अन्वयः—(स हि) अनाहारे, तुल्यः, प्रततरुदितक्षामवदनः, नृपतिसमदुःखम्, शरीरे, संस्कारम्, परिवहन्, दिवा, वा, रात्रौ, वा, यत्नैः, नरपतिम्, परिचरति । नृपः, प्राणान्, त्यजति, यदि, तस्य, अपि सद्यः उपरमः ॥१४॥

यौगन्धरायण—अच्छा महोदय ! तो क्या उस राजा को प्रकृतिस्थ करने के लिए कोई मन्त्री प्रयत्नशील नहीं है ?

ब्रह्मचारी—रुमण्वान् नामक मंत्री उन्हें धीरज बंधाने को अत्यधिक प्रयत्न कर रहा है । वह तो—

अनशन में वह राजा के सदृश है । निरन्तर रोते रहने से उसका मुखमण्डल निष्प्रभ हो गया है । राजा के समान दुःख पूर्वक शरीर की वेश-भूषा बनाये हुए

दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणीं अय्यउत्तो। [दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः ।]

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) अहो ! महद्भारमुद्वहति रुमण्वान् । कुतः—

व्या०—(स हि=अमात्यो रुमण्वान्) अनाहारे=अनशने । तुल्यः=तत्सदृशः । यथा राज्ञः उदयनस्य भोजनेऽरुचिस्तथैव राजदुःखदुःखितस्य तस्यापि भोजनेऽरुचिरिति भावः । प्रततरुदितक्षामवदनः=सततरोदनक्षीणवदनः । नृपतिसमदुःखम्=राजसदृशकष्टम् यथा तथा । शरीरे=देहे । संस्कारम्=स्नानादिकम् । परिवहन्=धारयन् । दिवा=दिवसे । वा=अथवा । रात्रौ वा=निशि वा । अहर्निशमिति तात्पर्यम् । यत्नैः=प्रयासैः । नरपतिम्=भूपतिम्, उदयनमिति भावः । परिचरति=परिसेवते । नृपः=राजा, उदयन इत्यर्थः । प्राणान्=असून् । त्यजति यदि=जहाति चेत् । तदा, तस्यापि=मंत्रिणो रुमण्वतोऽपि । सद्यः=सपदि । उपरमः=मृत्युः, भवेदिति शेषः । स तु सर्वात्मना उदयनमनुसरतीति भावः शिखरिणी वृत्तम् ॥१४॥

सुनिक्षिप्तः=उपयुक्तस्थाने सुस्थापितः । आर्यपुत्रः=महाराज उदयनः । महद्भारम्=कर्त्तव्यगौरवम् । उद्वाहयति=धारयति, सम्पादयतीत्यर्थः ।

टि०—न आहारः (नञ् स०) तस्मिन्=अनाहारे । प्रततं च तद् रुदितम् (क० धा०), क्षामं वदनं यस्य स (बहु०), प्रततरुदितेन क्षामवदनः (तृ० त०)=प्रततरुदितक्षामवदनः । परि+वह्+लट्, शतृ=परिवहन् ।

है । अहर्निश परिश्रम के साथ राजा की परिचर्या कर रहा है । यदि राजा प्राण-त्याग कर दें तो उसका भी तत्काल प्राणान्त हो जाय ॥ १४ ॥

वासवदत्ता—(स्वगत) भाग्य से महाराज इस समय योग्य व्यक्ति की देख-रेख में हैं ।

यौगन्धरायण—(स्वगत) अहो ! रुमण्वान् बहुत बड़े बोझ को सम्हाल रहा है । क्योंकि—

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ।। १५ ।।

(प्रकाशम्) अथ भोः ? पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ?

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने । 'इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्' इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम् । ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः । ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि ।

अन्वयः—हि, अयम्, भारः, सविश्रमः, तस्य, तु, श्रमः, प्रसक्तः । हि, तस्मिन्, सर्वम्, अधीनम्, यत्र, नराधिपः, अधीनः ।।१५।।

व्या०—हि=निश्चयेन । अयम्=एष । भारः=वासवदत्तारक्षणात्मको भारः । सविश्रमः=विश्रान्तियुक्त एव, वर्तते इति शेषः । तस्य तु=रुमण्वतस्तु । श्रमः=राजरक्षणरूपः परिश्रमः । प्रसक्तः=संलग्नः । हि=यस्माद्धेतोः । तस्मिन्=अमात्ये रुमण्वति । सर्वम्=सकलम् । अधीनम्=आयत्तम् । यत्र=यस्मिन् रुमण्वति । नराधिपः=राजा, उदयन इति भावः । अधीनः=आयत्तः । यौगन्धरायणः स्वीयभारापेक्षया रुमण्वतो भारस्य गुरुतरत्वं सूचयतीति भावः । अर्थान्तरन्यासः । अनुष्टुप् वृत्तम् ।।१५।।

पर्युषितम्=स्थितम् । कुपितम्=रुष्टम् । अपक्रान्तम्=निष्क्रान्तम् । प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव=अस्तंगतचन्द्रतारकमिव । अरमणीयः=अमनोहरः ।

टि०—वि+श्रमु+घञ्=विश्रामः । 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः'

मेरा यह भार कुछ कम हुआ हैं, किन्तु उसका भार वैसा ही बना हुआ है । सब कुछ उसी पर आश्रित है जिस पर स्वयं राजा आश्रित है ।। १५ ।।

(प्रकट) महाशय ! अब क्या राजा प्रकृतिस्थ हो गये हैं ?

ब्रह्मचारी—अभी मैं यह नहीं जानता । 'यहाँ उसके साथ मैं हंसा था', 'यहाँ उसके साथ मैंने वार्तालाप किया था', 'यहाँ उसके साथ मैं बैठा था',

तापसी--सो खु गुणवन्तो णाम राआ, जो आअन्तुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीअदि। [स खलु गुणवान् नाम राजा, य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते ।]

चेटी--भट्टिदारिए ! किं णु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि । [भर्तृदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

पद्मावती--(आत्मगतम्) मम हिअएण एव्व सह मन्तिदम् । [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम् ।]

ब्रह्मचारी--आ पृच्छामि भवन्तौ । गच्छामस्तावत् ।

उभौ--गम्यतामर्थसिद्धये ।

ब्रह्मचारी--तथाऽस्तु ।

रिति वृद्धिनिषेधः । नराणामधिपः (ष० त०) = नराधिपः । परि + वस् + क्त = पर्युषितम् । नक्षत्राणि चन्द्रश्च (द्वन्द्व) इतिनक्षत्रचन्द्राः, प्रोषिताः नक्षत्रचन्द्राः यस्मात्, तत् (बहु०) = प्रोषितनक्षत्रचन्द्रम् ।

प्रशस्यते = स्तूयते । मन्त्रितम् = विमृष्टम् । अर्थसिद्धये = प्रयोजनसाफल्यार्थम् ।

'यहाँ उससे मैं रुठा था', 'यहाँ उसके साथ मैं सोया था'—इस प्रकार विलाप करते हुए राजा को मन्त्री बड़े प्रयत्न से उस गाँव से निकालकर कहीं दूर ले गये । फिर, राजा के जाने के बाद वह गाँव चाँद तारों से विहीन आकाश की भाँति सौन्दर्यहीन हो गया । फिर, मैं भी वहाँ से निकल गया ।

तापसी—निश्चय ही वह राजा बड़ा गुणवान् होगा जिसकी ऐसी प्रशंसा यह आगन्तुक भी कर रहा है ।

चेटी--राजकुमारी ! क्या दूसरी स्त्री उसके हाथ लगेगी ?

पद्मावती--(स्वगत) मेरे मन की बात इसने पूछी है ।

ब्रह्मचारी--मैं आप दोनों से विदा मांगता हूँ । अब मैं जाता हूँ ।

दोनों--अपने प्रयोजन की सफलता के लिए जाइए ।

ब्रह्मचारी--वैसा ही हो । (जाता है)

(निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्र भवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल!

पद्मावती—अय्यस्स भइणिया अय्येण विना उक्कण्ठिस्सदि। [आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते।]

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति। (काञ्चुकीयमवलोक्य) गच्छामस्तावत्।

काञ्चुकीयः गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय।

यौगन्धरायणः—तथास्तु।

(निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम्।

पद्मावती—अय्ये! वन्दामि। [आर्ये! वन्दे।]

अभ्यनुज्ञातः=आज्ञप्तः सन्। उत्कण्ठिष्यते=समुत्सुका भविष्यति।

टि०—प्र+शंसु स्तुतौ+कर्मणि लट्+यक्=प्रशस्यते। 'मंत्रि गुप्तपरिभाषणे'+भावे क्तः=मंत्रितम्। अर्थस्य सिद्धिः (ष० त०), तस्मै=अर्थसिद्धये। अभि+अनु+ज्ञा+क्तः=अभ्यनुज्ञातः।

यौगन्धरायण—अच्छा! मैं भी देवी की अनुमति से जाना चाहता हूँ।

कंचुकी—ये आपकी अनुमति से जाना चाहते हैं।

पद्मावती—आपकी बहन आपके बिना व्याकुल होंगी।

यौगन्धरायण—सज्जन व्यक्ति के आश्रय में रहकर यह नहीं व्याकुल होंगी। (कञ्चुकी को देखकर) अच्छा, तो हम चलते हैं।

कञ्चुकी—जाइये। पुनः दर्शन दीजियेगा।

यौगन्धरायण—अच्छा। (चला जाता है।)

कञ्चुकी—अब भीतर प्रवेश करने का समय हो गया।

पद्मावती—आर्ये! मैं प्रणाम करती हूँ।

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि । [जाते तव सदृशं भर्त्तारं लभस्व ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! वन्दामि दाव अहं । [आर्ये ! वन्दे तावदहम् ।]

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि । [त्वमप्यचिरेण भर्त्तारं समासादय !]

वासवदत्ता—अणुग्गहीदह्मि । [अनुगृहीतास्मि] ।

काञ्चुकीय:—तदागम्यताम् । इत इतो भवति ! सम्प्रति हि—

खगा वासोपेता: सलिलमवगाढो मुनिजन:
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ १६ ॥

(निष्क्रान्ता: सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्क: ।

भर्त्तारम्=पतिम् । लभस्व=प्राप्नुहि । अचिरेण=शीघ्रम् । समासादय=प्राप्नुहि ।
अन्वय:—खगा:, वासोपेता: । मुनिजन:, सलिलम्, अवगाढ: । प्रदीप्त:,

---

तापसी—बेटी ! तुम अपने ही अनुकूल पति को प्राप्त करो ।

वासवदत्ता—आर्ये ! मैं भी प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—तुम भी शीघ्र ही अपने पति को पुन: प्राप्त करो ।

वासवदत्ता—मैं अनुगृहीत हुई ।

कञ्चुकी—तो आइये इधर-उधर आप देवियाँ । इस समय—पक्षी अपने-अपने घोंसलों में चले गये, मुनि लोग स्नान के लिए जल में प्रविष्ट हो गये हैं, यज्ञाग्नि प्रज्वलित होकर शोभायमान हो रही है, तपोवन में यज्ञ-धूम व्याप्त हो रहा है, दूर से गिरा हुआ और समेट लिया है किरणों को जिसने ऐसा वह सूर्य भी अपने रथ को मोड़कर धीरे-धीरे अस्ताचल की चोटी की ओर जा रहा है ।

(सभी निकल जाते हैं ।)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

०—०

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुञ्जरिए ! कुञ्जरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणासि, एषा भट्टिदारिआ माहवीलतामण्डवस्स पस्सदो कन्दुएण कीलदित्ति ! जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि। (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअ भट्टिदारिआ उवकरिदकण्णचुलिएण वाआमसञ्जादसेदबिन्दुविइत्तिदेण परिस्सन्तरमणीअदंसणेण मुहेण कन्दुएण कीलन्दी इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्स। [कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र

अग्निः भाति । धूमः, मुनिवनम्, प्रविचरति । दूरात्, परिभ्रष्टः, असौ, रविः, अपि, संक्षिप्तकिरणः, (सन्) रथम्, व्यावर्त्य, शनैः, अस्तशिखरम् प्रविशति ॥१६॥

व्या०—खगाः = पक्षिणः । वासोपेताः = नीडंप्राप्ताः । मुनिजनः = तापसजनः । सलिलम् = जलम् । अवगाढः = अवतीर्णः, स्नानार्थमिति भावः । प्रदीप्तः = प्रज्वलितः । अग्निः = वह्निः । भाति = प्रकाशते । धूमः = यज्ञधूमः । मुनिवनम् = तपोवनम् । प्रविचरति = व्याप्नोति । दूरात् = दूरप्रदेशात् । परिभ्रष्टः = च्युतः । असौ = अयम् । रविः अपि = सूर्योऽपि । संक्षिप्तकिरणः = संकुचितकरः सन् । रथम् = स्यन्दनम् । व्यावर्त्य = निरुध्य । शनैः = मन्दं यथा स्यात्तथा । अस्त-

---

(चेटी का प्रवेश)

चेटी— कुञ्जरिका ! ओ कुञ्जरिका ! राजकुमारी पद्मावती कहाँ हैं ? क्या कहा ? "यह राजकुमारी माधवी लता कुञ्ज के पास गेंद खेल रही हैं" ? अच्छा तो मैं राजकुमारी के पास चलती हूँ। (घूमकर, देखकर) ओहो ? यह कान की बालियों को ऊपर उठाये हुए, परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों से विचित्र और थकने से सुन्दर दीखने वाले मुँह से उपलक्षित होकर इधर ही आ रही हैं। तो मैं भी इनके पास चलूँ। (जाती है)

(प्रवेशक समाप्त)

भर्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि। अम्मो ! इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति ! यावदुपसर्प्यामि]

(निष्क्रान्ता)

प्रवेशकः।

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावति सपरिवारा वासवदत्तया सह।)

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कन्दुओ ! [हला ! एष ते कन्दुकः।]

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं। [आर्ये ! भवत्विदानीमेतावत्।]

शिखरम्=अस्ताचलशृङ्गम्। प्रविशति=प्रवेशं करोति, गच्छतीत्यर्थः। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। शिखरिणी वृत्तम् ॥१६॥

टिप्पणी—प्र+विश्+तुमुन्=प्रवेष्टुम्। अनु+ग्रह+क्त+टाप्=अनुगृहीता। खे गच्छन्तीति, ख-उपपदपूर्वकाद् गम् धातोः 'अन्यत्रापि दृश्यते' इत्यनेन डप्रत्यये=खगाः। वासे उपेताः (स० त०)=वासोपेताः। अव+गाह+क्त=अवगाढः। संक्षिप्ताः किरणाः येन (बहु०) सः=संक्षिप्तकिरणः। वि+आङ्+वृत्+णिच्+क्त्वा, ल्यप्=व्यावर्त्य।

इति प्रथमोऽङ्कः

—:※:—

भर्तृदारिका=राजपुत्री। भणसि=कथयसि। माधवीलतामण्डपस्य=वासन्तीलतिकाकुञ्जस्य। अम्मो=विस्मयसूचकमव्ययमिदम्। उत्कृतकर्णचूलिकेन=ऊर्ध्वस्थापितकर्णाभरणविशेषेण। व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन=क्रीडापरिश्रमसमुद्भूतघर्मजलवैचित्र्ययुक्तेन। परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन=परिश्रान्तियुक्तसुन्दरविलोकनेन। क्रीडन्ती=खेलन्ती। उपसर्प्यामि=समीपे गच्छामि।

(परिजनों एवं वासवदत्ता सहित गेंद खेलती हुई पद्मावती का प्रवेश)

वासवदत्ता—सखी यह रही तुम्हारी गेंद।

पद्मावती—आर्ये ! अब इतना ही रहने दो।

वासवदत्ता—हला ! अदिचिरं कन्दुएण कीलिअ अहिअसञ्जादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता। [हला अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ।]

चेटी—कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ। णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो। [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका। निर्वर्त्यतां तावत् अयं कन्याभावरमणीयः कालः।]

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ? [आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ?]

टि०—उत्कृते कर्णचूलिके यस्मिन् (बहु०) तेन=उत्कृतकर्णचूलिकेन। व्यायामेन सञ्जातः (तृ० त०), स्वेदस्य बिन्दवः (ष० त०), व्यायामसञ्जातश्च ते स्वेदबिन्दवः (क० धा०), तैः विचित्रितेन (तृ० त०), व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन। परिश्रमणं परिश्रान्तम् (भावेक्तः)। रमणीयं दर्शनं यस्य, तत् (बहु०)=रमणीयदर्शनम्, परिश्रान्तेन रमणीयदर्शनम्, (तृ० त०) तेन=परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन। क्रीड+शतृ+ङीप्=क्रीडन्ती। उप+सृ+लृट्=उपसर्प्स्यामि। आसन्नभविष्यति लट्प्रयोगः, 'उपसर्पामि' इति पाठे 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इत्यनेन वर्तमानसमीपे भविष्यति लट् प्रयोगः। अधिकः सञ्जातो रागो ययोः (बहु०) तौ=अधिकसञ्जातरागौ।

अतिचिरम्=दीर्घकालं यावत्। अधिक सञ्जातरागौ=प्रचुरोद्भूतरक्तिमौ। परकीयाविव=अन्यदीयाविव। निवर्त्यताम्=समाप्यताम्। कन्याभावरमणीयः=कुमारिकाभावमनोहरः। अपहसितुम्=उपहासं कर्तुम्। निध्यायसि=पश्यसि। 'आलोकनं तु निध्यानं दर्शनालोकनेक्षणम्' इत्यमरः। वरमुखम्=सुन्दरं वदनम्।

वासवदत्ता—सखी ! बहुत देर तक गेंद खेलने से अधिक लाल हुए तुम्हारे हाथ पराये से हो गये हैं।

चेटी—राजकुमारी खेलें, अभी और खेलें। बचपन के इस सुन्दर समय को आनन्द में बितावें।

पद्मावती—आर्ये ! क्यों इस समय मानो मेरी हँसी उड़ाने के लिए तुम देख रही हो ?

वासवदत्ता—णहि णहि ! हला ! अधिअं अज्ज सोहदि । अभिदो विअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि । हला ! अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।]

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस । [अपेहि । मेदानीं मामपहस ।]

वासवदत्ता—एसह्मि तुह्णीआ भविस्सम्महासेणवहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !] .

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदो णाम । तस्स परिमाणणिब्बुत्तं णामहेअं महासेणोत्ति । [अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम । तस्य परिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति ।]

अपेहि = दूरीभव । मेदानीं मामुपहस = अधुना ममोपहासं मा कार्षीः । तूष्णीका = मौनशीला । भविष्यन्महासेनवधु=भाविप्रद्योतस्नुषे । 'समाः स्नुषाजनीवध्वः' इत्यमरः । परिमाणनिर्वृत्तम्=परिमितिनिष्पन्नम् । सैन्यपरिमाण तत्र ।

टि०— कन्यायाः भावः (ष० त०), तेन रमणीयः (तृ० त०) = कन्याभावरमणीयः । निर् + वृत् + णिच् + कर्मणि लोट् = निवर्त्यताम् । नि + ध्यै + लट् = निध्यायसि । वरं च तन्मुखम् (क० धा०)=वरमुखम् । अप + 'इण् गतौ' + लोट्, हि=अपेहि । तूष्णीम् + कन् + निपातनात् स्त्रियामाप् = तूष्णीका ।

वासवदत्ता—नहीं नहीं सखी ! आज तुम्हारा मुख अधिक सुन्दर लग रहा है । आज मुझे तुम्हारा मुख सब ओर से सुन्दर दिखाई दे रहा है ।

पद्मावती—हटो । इस समय मेरा उपहास मत करो ।

वासवदत्ता—अच्छा तो महासेन की होने वाली पुत्रवधू ! लो यह मैं चुप हो गई ।

पद्मावती—यह महासेन कौन हैं ?

वासवदत्ता—उज्जयिनी का राजा प्रद्योत है । उसकी सेना के परिमाण से उसका नाम 'महासेन' पड़ा है ।

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रञ्ञा सह सम्बन्धं णेच्छदि। [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति।]

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? [अथ केन खल्विदानीमभिलषति ?]

चेटी—अत्थि वच्छराओ उअअणो णाम। तस्स गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि। [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम। तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलषति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि। (प्रकाशम्) केण कारणेण ? [आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति। केन कारणेन ?]

चेटी—साणुक्कोसो त्ति। [सानुक्रोश इति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि। अअं वि जण एव्वं उम्मादिदो। [जानामि जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः।]

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ? [भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

हेतुरित्यर्थः। अभिलषति ! कामयते। सानुक्रोशः=सदयः। उन्मादितः=उन्मादं प्रापितः। विरूपः=कुरूपः, असुन्दर इति भावः।

चेटी—राजकुमारी उस राजा के साथ विवाह-सम्बन्ध नहीं चाहती हैं।

वासवदत्ता—तो फिर अब किसके साथ चाहती हैं ?

चेटी—वत्सदेश के राजा उदयन हैं। राजकुमारी उनके गुणों को चाहती हैं।

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र को पति रूप में चाहती है। (प्रकट) किस कारण से ?

चेटी—इसलिए कि वे दयालु हैं।

वासवदत्ता—(स्वगत) जानती हूँ, जानती हूँ। इस व्यक्ति को (मुझे) भी इसी प्रकार उन्मत्त किया गया था।

चेटी—राजकुमारी ! यदि वे राजा कुरूप हों तो ?

वासवदत्ता—णहि णहि। दसणीओ एव्व। [नहि नहि। दर्शनीय एव।]

पद्मावती— अय्ये ! कहं तुव जाणासि ? [आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। किं दाणिं करिस्सं ? होदु, दिट्ठं। (प्रकाशम्) हला ! एव्व उज्जइणीओ जणो मन्तेदि। [आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। किमिदानीं करिष्यामि ? भवतु, दृष्टम्। हला ! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते।]

पद्मावती— जुज्जइ। ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो। सव्वजणमणोभिरामं खु सोभग्गं णाम। [युज्जते। न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः। सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।]

(ततः प्रविशति धात्री।)

आर्यपुत्रपक्षपातेन = आर्यपुत्रासक्त्या। अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः। समुदाचारः = व्यवहारः, शिष्टाचार इति यावत्। उज्जयिनीयः = उज्जयिनीवासी। मन्त्रयते = कथयति। युज्यते = संभाव्यते।

उज्जयिनीदुर्लभः = उज्जयिनीदुष्प्रापः। सर्वजनमनोभिरामम् = सकलजनहृदयाह्लादकम्।

वासवदत्ता—नहीं, नहीं, वे तो दर्शनीय हैं।

पद्मावती—आर्ये ! तुम कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र के प्रति अतिप्रेम के कारण मैं औचित्य का उल्लंघन कर बैठी। अब क्या करूँ ? अच्छा, (प्रकट) सखी ! उज्जयिनी के लोग ऐसा ही कहते हैं।

पद्मावती—सम्भव है। उज्जयिनी के लोगों ने उन्हें देखा है। सौन्दर्य वही है जो सब लोगों के मन को आह्लादित करता हो।

(धाय का प्रवेश)

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए ! दिण्णासि । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! दत्तासि ।

वासवदत्ता—अय्ये ! कस्स ? [आर्ये ! कस्मै ?]

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स । [वत्सराजायोदयनाय ।]

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ ? [अथ कुशली स राजा ?]

धात्री—कुसली ओ आअदो । तस्स भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ । [कुशली स आगतः । तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च ।] ।

वासवदत्ता—अच्चाहिदं ? [अत्याहितम् ।]

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ? [किमत्रात्याहितम् ?]

वासवदत्ता—ण हु किञ्चि । तह णाम सन्तप्पिय उदासीणो होदि

कुशली = कुशलयुक्तः । प्रतीष्टा = स्वीकृता ।

टि०—उत् + मद् + णिच् + क्त = उन्मादितः । सम् + उद् + आ + चर् + घञ् = समुदाचारः । उज्जयिन्यामयमिति विग्रहे 'वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या' इत्यनेनोज्जयिनीशब्दस्य वृद्धसंज्ञायाम् 'तस्येदम्' इत्यस्याधिकारे 'वृद्धाच्छ' इति छप्रत्यये, ईयादेशे = उज्जयिनीयः । विगतं रूपं यस्मात्, स (बहु०) = विरूपः । सर्वे च ते जनाः (क० धा०), तेषां मनः (ष० त०) सर्वजनमनसः अभिरामम् (ष० त०) सर्वजनमनोभिरामम् । अभि + रम् + घञ् = अभिरामम् । कुशलं अस्ति अस्येति कुशलशब्दात् 'अत इनिठनौ' इति इनिप्रत्यये = कुशली । प्रति + इष् + क्त + स्त्रियामाप् प्रतीष्टा ।

धात्री—राजकुमारी की जय हो । राजकुमारी ! तुम दे दी गई हो ।

वासवदत्ता—आर्ये ! किसे ?

धात्री—वत्सराज उदयन को ।

वासवदत्ता—अब वे सकुशल तो हैं ?

धात्री—हाँ सकुशल हैं और यहाँ आये भी हैं । उन्होंने राजकुमारी को स्वीकार भी कर लिया है ।

वासवदत्ता—ओह, बहुत बुरा हुआ ।

धात्री—इसमें क्या बुरा हुआ ।

वासवदत्ता—नहीं कुछ नहीं किन्तु वासवदत्ता के विरह में ऐसा संतप्त

त्ति । [न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति ।]

धात्री—अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होन्ति । [आर्य ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वरिदा ? [आर्ये स्वयमेव तेन वरिता ?]

धात्री—णहि णहि । अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविञ्ञाणवओरूअं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा । [नहि नहि । अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एव्व ! अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो ! [एवम् ! अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः ।]

(प्रविश्यापरा)

अत्याहितम् = अयुक्तम्, अतिरभसकृतं कर्मेति भावः । उदासीनः = तटस्थः । आगमप्रधानानि = शास्त्रवचनप्रमुखानि । सुलभपर्यवस्थानानि = सुप्राप्यसहजस्वभावानि । महापुरुषहृदयानि = श्रेष्ठजनचेतांसि । वरिता = अङ्गीकृता ।

अन्यप्रयोजनेन = अन्यकारणेन । अभिजनविज्ञानवयोरूपम् = कुलकलाज्ञानावस्थासौन्दर्यम् । महाराजेन=दर्शकेन । अनपराद्धः=निरपराधः त्वरताम्=शीघ्रतां करोत्वित्यर्थः । सम्भ्रमे द्विरुक्तिः । कौतुकमङ्गलम् = उद्वाहसूत्रबन्धनादिरूपं शुभकार्यम् ।

होकर अब एकाएक उसके प्रति उदासीन हो गये ।

धाय—आर्ये ! महापुरुषों के हृदय शास्त्रोपदेशों को मान्यता देते हुए सहज ही स्वाभाविक दशा में आ जाते हैं ।

वासवदत्ता—आर्ये ! क्या उन्होंने स्वयं ही पद्मावती को वरण किया ?

धाय—नहीं नहीं ! अन्य कार्यवश आये हुए उनके कुल, ज्ञान, आयु और रूप को देखकर स्वयं महाराज ने उन्हें पद्मावती दे दी ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यदि ऐसा है तो आर्यपुत्र बिल्कुल निरपराधी हैं ।

(दूसरी दासी का प्रवेश)

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या । अज्ज एव्व किल सोभणं णक्खत्तं । अज्ज एव्व कोदुअमङ्गलं कादव्वं त्ति अह्माण भट्टिणो भणादि । [त्वरतां त्वरतां तावदार्या । अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम् । अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अन्धीकरेदि मे हिअअं । [यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम् ।]

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः ।

भट्टिनी=महाराज्ञी । भणति=कथयति, आदिशतीत्यर्थः । त्वरते=शीघ्रतां कुरुते । अन्धीकरोति=प्रतिपत्तिशून्यं करोतीति भावः ।

टि०—अति+आ+धा+क्त=अत्याहितम् । आगमः प्रधानं येषां, तानि (बहु०)=आगमप्रधानानि । सुलभं पर्यवस्थानं येषां, तानि (बहु०)=सुलभपर्यवस्थानानि । परि+अव+स्था+ल्युट्=पर्यवस्थानम् । 'ञित्वरा संभ्रमे' धातोर्लोटि=त्वरताम् । अनन्धं अन्धं यथा सम्पद्यते तथा करोति, 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्त्तरिच्विः' इति च्विः, 'अस्य च्वौ' इत्यकारस्येत्वे=अन्धीकरोति ।

इति द्वितीयोऽङ्कः

दासी—आर्यं । जल्दी करें जल्दी करें । आज ही अच्छा मुहूर्त है । हमारी महारानी की आज्ञा है कि आज ही कौतुकमङ्गल करना है ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह जैसे-जैसे जल्दी करती है, वैसे-वैसे ही मेरे हृदय को अन्धा बना रही है ।

धाय—आइए राजकुमारी, आइए ।

(सब लोगों का प्रस्थान)

द्वितीय अङ्क समाप्त ।

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता ।)

वासवदत्ता—विवाहामोदसङ्कुले अन्तेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदह्मि पमदवणं । जाव दाणिं भाअदेअणिव्वुत्तं दुःखं विणोदेमि । (परिक्रम्य) अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो जा उवविसामि । (उपविश्य) धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ । ण खु अहं पाणाणि परिच्चजामि । अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मन्दभाआ । [विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुःशाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम् । यावदिदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि । अहो ! अत्याहितम् । आर्य-

---

विवाहामोदसङ्कुले=पद्मावतीपरिणयानन्दयुक्तजनव्याप्ते । अन्तःपुरचतुःशाले=स्त्र्यागारसज्जवने । 'स्त्र्यागारं भूभुजामन्तःपुरं स्यादवरोधनम् । शुद्धान्तश्चावरोधश्च...।' इत्यमरः । 'सज्जवनं त्विदम् । चतुःशालम्' इत्यमरः । प्रमदवनम्=अन्तःपुरोचितम् । 'प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' इत्यमरः । भागधेयनिर्वृत्तम्=दुर्भाग्यप्राप्तम् । दुःखम्=प्रियतमवियोगजन्यं कष्टम् । विनोदयामि=

(चिन्तामग्न वासवदत्ता का प्रवेश)

वासवदत्ता—विवाहोत्सव के उल्लास से परिपूर्ण रनिवास की चौखण्डी में पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ अन्तःपुर के उद्यान में आई हूँ । इस समय दुर्भाग्य से निष्पन्न दुःख को कुछ हलका करूँ । (घूमकर) ओह, बहुत बुरा हुआ । आर्यपुत्र भी पराये हो गये । अच्छा बैठ जाऊँ । (बैठकर) धन्य है वह चकवी जो प्रिय से वियुक्त होकर नहीं जी सकती किन्तु मैं अपने प्राणों को नहीं छोड़ रही हूँ । मैं अभागिन 'पति को पुनः देख पाऊँगी' इसी अभिलाषा से जी रही हूँ ।

पुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । यावत् उपविशामि । धन्याखलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति । न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि । आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा ।]

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी ।)

चेटी— कहिं णु खु गदा अय्या आवन्तिआ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इयं चिन्तासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचन्दलेहा विअ अमण्डिदभद्दअं वेसं धारअन्दी पिअङ्गुसिलापट्टए उवविट्ठा । जाव उवसप्पामि (उपसृत्य) अय्ये ! अवन्तिए ! को कालो, तुमं अण्णेसामि । [क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका ? अम्मो ! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा । यावदुपसर्पामि । आर्ये ! आवन्तिके ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

तद्विषयकचिन्तया किञ्चिदुपशमयामि । चक्रवाकवधूः=कोकभार्या । धन्या= सौभाग्यवती । अन्योन्यविप्रयुक्ता=परस्परवियुक्ता ।

चिन्ताशून्यहृदया = आध्याननिर्बोधमानसा । नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेव= तुषारसमाच्छादितचन्द्रकलेव । 'अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिमम्' इत्यमरः । अमण्डितभद्रकम्=अनलंकृतमपि मनोहरम् । वेषम्=परिधानम् । प्रियङ्गु शिलापट्टके=फलिनीप्रस्तरखण्डे । 'प्रियङ्गु फलिनी फली' इत्यमरः । अन्विष्यामि= गवेषयामि ।

टि० – चतसृणांशालानां समाहारः (समा० द्विगु०) इति चतुःशालम्, अन्तःपुरस्य चतुःशालम् (ष० त०)=अन्तःपुरचतुःशालम् । शून्यं हृदयं यस्याः, सा (बहु०), चिन्तया शून्यहृदया (तृ० त०)=चिन्ताशून्यहृदया । नीहारेण

(हाथ में फूलों को लिए हुए चेटी का प्रवेश)

चेटी – आर्या अवन्तिका भला कहाँ चली गई ? (घूमकर और देखकर) अहो, यह चिन्ता से शून्य हृदयवाली, कुहरे से आच्छादित चन्द्रकिरण जैसी, अलंकृत न होने पर भी सुन्दर परिधान को धारण करती हुई प्रियंगुलता के नीचे शिलापट्ट पर बैठी हुई हैं । अच्छा, इनके पास चलूँ । (पास जाकर) आर्या अवन्तिका भला कब से मैं आपको ढूंढ़ रही हूँ ।

वासवदत्ता—किं णिमित्तं ? [किं निमित्तम् ?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउत्ता त्ति इम दाव कोदुअमालिअं गुह्मदु अय्या । [अस्माकं भट्टिनी भणति–महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या ।]

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुह्मिदव्वं ? [अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?]

चेटी—अम्हाअं भट्टिदारिआए । [अस्माकं भर्तृदारिकायै ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी । अहो अकरुणा खु इस्सरा । [एतदपि मया कर्तव्यमासीत् । अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः ।]

चेटी—अय्ये ! मा दाणिं अण्णं चिन्तिअ । एसो जाभादुओ मणिभूमिए ह्लाअदि । सिग्घं दाव गुह्मदु अय्या । [आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्त-

---

प्रतिहताः (तृ० त०), सा चासौ चन्द्रलेखा (क० धा०)—नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखा । न मण्डितः (नञ् स०) अमण्डितः, भद्र एव भद्रकः इति स्वार्थे कप्रत्ययः, अमण्डितश्चासौ भद्रकः (क० धा०) तम्=अमण्डितभद्रकम् ।

महाकुलप्रसूता=उत्कृष्टवंशोद्भवा । स्निग्धा=प्रिया । कौतुकमालिकाम्=वैवाहिकस्रजम्, विवाहमालामित्यर्थः । गुम्फतु=ग्रथ्नातु । गुम्फितव्यम्=ग्रथनीयम् । अकरुणाः=निर्दयाः । ईश्वराः=देवाः, भाग्यविधातारः इति भावः ।

वासवदत्ता—किसलिए ?

चेटी—हमारी महारानी ने कहा है कि आप उच्चवंश में उत्पन्न हुई हैं, स्नेह रखती हैं तथा चतुर हैं अतः आप ही इस विवाह-माला को गूँथे ।

वासवदत्ता—किसके लिए गूँथनी है ?

चेटी—हमारी राजकुमारी के लिए ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह भी मुझे करना था । देवता निश्चय ही निर्दय हैं !

चेटी—आर्ये ! अब कुछ और मत सोचें । जामाता रत्न-भूमि में नहा रहे हैं । आप शीघ्र इसे गूँथ दें ।

यित्वा । एष जामाता मणिभूम्यां स्नायति । शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्णं चिन्तेदुं । (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ? [न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् । हला ! किं दृष्टो जामाता ?]

चेटी— आम्, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अह्माअं कोदूहलेण अ । [आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च ।]

वासवदत्ता— कीदिसो – जामादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

चेटी अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुवो । [आर्ये, भणामि तावत्, नेदृशो दृष्टपूर्वः ।]

वासवदत्ता— हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला ! भण भण, किं दर्शनीयः ?]

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो काम खामदेवो त्ति । [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।]

वासवदत्ता—होदु एत्तअं । [भवत्वेतावत् ।]

मणिभूम्याम् = मणिमयवेदिकायाम् । स्नायति = स्नानंकरोति ।

टि०—"ष्णा शौचे" धातोर्भ्वादिकं रूपम् = स्नायति ।

शरचापहीनः कामदेवः = बाणकार्मुकरहितः स्मरः, सौन्दर्ये तु साक्षात् कामदेव इत्यर्थः ।

वासवदत्ता—(स्वगत) कुछ और तो सोच ही नहीं सकती । (प्रकट) सखी ! क्या तुमने जामाता को देखा है ?

चेटी—हाँ, राजकुमारी के स्नेह और अपने कौतूहल के कारण देखा है ।

वासवदत्ता—जामाता कैसे हैं ?

चेटी—आर्ये ! बस इतना ही कहती हूँ कि ऐसा जामाता मैंने पहले कभी नहीं देखा ।

वासवदत्ता—सखी ! कहो, कहो । क्या वे सुन्दर हैं ?

चेटी—बस, धनुषबाण से रहित कामदेव ही हैं, ऐसा कहा जा सकता है ।

वासवदत्ता—अच्छा, बस करो ।

चेटी--किण्णित्तं वारेसि ? [किंनिमित्तं वारयसि ?

वासवदत्ता--अजुत्तं परपुरुससङ्कित्तणं सोदुम् । [अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्तनं श्रोतुम् ।

चेटी--तेह हि गुह्मदु अय्या सिग्घं । [तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम् ।]

वासवदत्ता-इअं गुह्णामि । आणहि दाव ।[इयं गुम्फामि । आनयतावत् ।]

चेटी--गह्णदु अय्या । [गृह्णात्वार्या ।]

वासवदत्ता--(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदंतावदौषधं किं नाम ?]

चेटी--अविहवाकरणं णाम । [अविधवाकरणं नाम ।]

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुह्मिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ । (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ?[इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च । इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटी--सवत्तिमद्दणं णाम । [सपत्नीमर्दनं नाम]

वासवदत्ता--इदं ण गुह्मिदव्वं । [इदं न गुम्फितव्यम् ।]

वारयसि = निषेधसि । अयुक्तम् = अनुचितम् । परपुरुषसङ्कीर्तनम् = अन्यजनप्रशंसनम् । गुम्फामि = ग्रथ्नामि । सपत्नीमर्दनम् = एकपत्नीसंचूर्णनम् ।

चेटी—क्यों रोकती हैं ।

वासवदत्ता—पर-पुरुष की प्रशंसा सुनना अनुचित है ।

चेटी—अच्छा तो आप शीघ्र माला गूँथ दें ।

वासवदत्ता--यह गूँथती हूँ । ले आओ ।

चेटी--यह लीजिए ।

वासवदत्ता--(रोककर और देखकर) इस औषधि का नाम क्या है ?

चेटी—यह सुहाग बनाये रखने वाली औषधि है ।

वासवदत्ता—(स्वगत) इस अपने और पद्मावती के लिए अवश्य गूँथना चाहिये । (प्रकट) इस औषधि का क्या नाम है ?

चेटी--सौत का मानमर्दन करने वाली--सपत्नी मर्दन ।

वासवदत्ता--इसे नहीं गूँथना चाहिए ।

चेटी--कीस ? [कस्मात् ?]

वासवदत्ता--उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति। [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति ।]

(प्रविश्यापरा)

चेटी--तुवरतु तुवरदु अय्या । एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भन्त-रचउस्सालं पवेसीअदि । [त्वरतां त्वरतामार्या । एष जामाता अविधवाभिर-भ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते ।]

वासवदत्ता--अइ ! वदामि, गह्ण एदं । [अयि ! वदामि,; गृहा-णैतत् ।]

चेटी--सोहणं । अय्ये ! गच्छामि दाव अहं । [शोभनम् । आर्ये ! गच्छामि तावदहम् ।]

(उभे निष्क्रान्ते ।)

वासवदत्ता--गदा एसा । अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो । अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं

उपरता = मृता । अविधवाभिः = सौभाग्यवतीभिः स्त्रीभिरिति भावः ।

चेटी—क्यों ?

वासवदत्ता—उसकी पत्नी तो मर चुकी है इसलिए बेकार है ।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्या जल्दी करो जल्दी करो । जामाता को सुहागिनें अन्दर चौशाला में ले जा रही हैं ।

वासवदत्ता—अरी कह तो रही हूँ--लो इसे ।

चेटी--यह तो बहुत सुन्दर है । अब मैं जाती हूँ ।

(दोनों चेटियाँ चली जाती हैं)

वासवदत्ता--यह चली गई । ओह बहुत बुरा हुआ । आर्यपुत्र भी पराये हो गये । ओह ! मैं भी शय्या पर अपने दुःख को हल्का करूँ, यदि नींद आ जाये तो ।

लभामि। [गतैषा। अहो! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। अविदा! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे।]

(निष्क्रान्ता।)

इति तृतीयोऽङ्कः।

—: ❀ :—

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेदविवाहमङ्गलरमणिज्जो कालो दिट्ठो। भो! को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति।

अविहा = विषादसूचकमव्ययम्।

टि०—सम् + कृत् + णिच् + ईत्व + ल्युट् = सङ्कीर्त्तनम्। ओषधिरेव औषधम्, "ओषधेरजातौ" इत्यनेन स्वार्थे अण् = औषधम्। विगतो धवो यस्याः सा विधवा (बहु०), न विधवा अविधवा (नञ् स०), अविधवा क्रियतेऽनेनेति करणे ल्युटि = अविधवाकरणम्। सपत्नीमर्द्यते = अभिभूयते अनेन इति सपत्नीमर्दनम्-करणे ल्युट्। प्र + विश् + णिच् + कर्मणि लट् = प्रवेश्यते।

इति तृतीयोऽङ्कः

—: ❀ :—

(चला जाती है)

तृतीय अङ्क समाप्त

—: ❀ :—

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(हर्षपूर्वक) सौभाग्य से ही मैंने वत्सराज उदयन के अभीष्ट मंगलमय विवाह का शुभ अवसर देखा। अरे! भला कौन जानता था कि हम वैसे अनर्थ रूपी जल-भंवर में फेंके गये भाग्य से पुनः उभरेंगे। अब हम राजमहलों में रहते हैं, अन्तःपुर की बावड़ियों में स्नान करते हैं, स्वभाव से मीठी और

इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अन्देउरदिग्घिआसु ह्लाईअदि, पकिदिमउरसु-उमाराणि मोदअखज्जआणि खज्जीअन्ति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरु-वासो मए अणुभवीअदि। एक्को खु महन्तो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि। जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि! भो! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च। [भोः! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्याभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः। भोः! को नामैतज्जानाति—तादृशे वयमनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्यामः इति। इदानीं प्रसादेषूष्यते, अन्तःपुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुर-सुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्यनप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयानुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति, सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे। यथा वातशोणितमभित इव वर्तत इति पश्यामि। भोः! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च।]

अभिप्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः=अभीप्सितविवाहमङ्गलशोभनः। अनर्थसलिलावर्ते=संकटजलभ्रमे। "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" इत्यमरः। प्रक्षिप्ताः=दुर्भाग्येन निक्षिप्ताः। पुनरुन्मङ्क्ष्यामः=पुनरुन्मुक्ताः भविष्यामः। दीर्घिकासु=वापीषु। "वापी तु दीर्घिका" इत्यमरः। स्नायते=स्नानं क्रियते। प्रकृतिमधुर-सुकुमाराणि=स्वभावमिष्टसुकोमलानि। मोदकखाद्यानि=लड्डुकभोज्यवस्तूनि। खाद्यन्ते=भक्ष्यन्ते। अनप्सरः संवासः=अप्सरः सहवासविहीनः। उत्तरकुरु-वासः=देवभूमिविशेषवासः। अनुभूयते=अनुभवगोचरीक्रियते। न परिणमति=परिपाकं न लभते। सुप्रच्छदनायाम्=शोभनास्तरणयुक्तायाम्। वातशोणितम्=एतन्नामधेयो रोगः। आमयपरिभूतम्=रोगाकुलम्। अकल्यवर्तं च=प्रातराशाभावश्च। "प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषः प्रत्युषसी अपि" इत्यमरः।

मुलायम मिठाइयाँ खाते हैं। इस प्रकार केवल अप्सराओं के सहवास को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के स्वर्ग-सुखों का उपभोग करते हुए हम उत्तर कुरुवास का अनुभव कर रहे हैं। केवल एक ही महान् दोष है कि मेरा भोजन ठीक से नहीं पचता और सुन्दर गद्दे की शय्यापर भी नींद नहीं आती। लगता है, मेरे शरीर में वातरक्त नामक रोग व्याप्त हो गया है। अरे! रोग से आक्रान्त होना और सुबह-सुबह भोजन का न मिलना, दोनों ही कष्टदायक होते हैं।

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अह्मो ! एसो अय्यवसन्तओ (उपगम्य) अय्य ! वसन्तअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि । [कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः । आर्य वसन्तक ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किंणिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ? [किं निमित्तं भद्रे मामन्विष्यसि ?]

चेटी—अह्माणं भट्टिणी भणादि—अवि ह्नादो जामादुओ त्ति । [अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति ।]

विदूषक :—किंणिमित्तं भोदि पुच्छदि । [किंनिमित्तं भवती पृच्छति ?]

चेटी—किमण्णं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति । [किमन्यत् सुमनोवर्णकमानयामीति ।]

सुमनोवर्णकम्=पुष्पचन्दनादिविलेपनम् । "गात्रानुलेपनी वर्तिर्वर्णकं स्याद्विलेपनम्" इत्यमरः ।

टि०—अभिप्रेतं च तद्विवाहमङ्गलम् (क० धा०), तेन रमणीयः (तृ० त०)=अभिप्रेतविवाहरमणीयः । सलिलस्य आवर्त्तः (ष० त०), अनर्थ एव सलिलावर्त्तः, 'मयूरव्यंसकादयश्चे' ति रूपकसमासः, तस्मिन्=अनर्थसलिलावर्त्ते । उद्+मस्ज्+लृट् मस्=उनमङ्क्ष्यामः । वस्+कर्मणि लट्+त=उष्यते । अप्सरसां संवासः (ष० त०)=अप्सरसंवासः, अविद्यमानोऽप्सरसंवासो

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्य वसन्तक कहाँ चले गये ? (घूमकर, देखकर) अहो ! यही तो आर्यवसन्तक हैं ! (पास जाकर) आर्य वसन्तक ! मैं कब से आपको ढूंढ़ रही हूँ ।

विदूषक—(देखकर) भद्रे ! मुझे किसलिए ढूंढ़ रही हो ?

चेटी—हमारी महारानी ने पूछा है—क्या दामाद स्नान कर चुके ?

विदूषक—वे क्यों पूछती हैं ।

चेटी—और क्या ? फूलों की माला और चन्दनादि लेप ले आऊं इसलिए ।

विदूषकः—ह्लादो तत्तभवं। सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअअं। [स्नातस्तत्रभवान्। सर्वमानयतु भवतो वर्जयित्वा भोजनम्।]

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं ? [किंनिमित्तं वारयसि भोजनम् ?]

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो। [अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्तः इव कुक्षिपरिवर्तः संवृत्तः।]

चेटी—ईदिसो एव्व होदि। [ईदृश एव भव।]

विदूषकः— गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदी सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ)

यस्मिन्, सः (नञ् बहु०) अनप्सरसंवासः। उत्तराश्च ते कुरवः (क० धा०), उत्तरकुरुषु वासः (स०त०)=उत्तरकुरुवासः। प्रच्छाद्यतेऽनेन इति—प्र+छद्+करणे ल्युट्=प्रच्छदनम्, शोभनं प्रच्छदनं यस्याम्, सा (बहु०)=सुप्रच्छदना, तस्याम्=सुप्रच्छदनायाम्।

तत्रभवान्=जामातारूप उदयनः। वारयसि=निवारयसि। अधन्यस्य=भाग्यहीनस्य। अक्षपरिवर्तः इव=नेत्रपरिवर्त्तनमिव। कुक्षिपरिवर्त्तः=उदरपरिवर्त्तनम्, उदरविलोडनमिति भावः। वसन्तागमे कोकिलानां नयनानि रक्तिमोपेतानि भवन्ति तथैव मे कुक्षौ विलोडनं भवतीत्याशयः। "पिचण्डकुक्षिजठरं तुन्दम्" इत्यमरः। सकाशम्=समीपे।

टि०—अक्ष्णोः परिवर्त्तः (ष० त०)=अक्षिपरिवर्त्तः।

विदूषक—महाराज ने स्नान किया। आप भोजन छोड़कर सब ले आइये।

चेटी—किस कारण से आप भोजन लाने को मना कर रहे हैं ?

विदूषक—मुझ अभागे के पेट में ऐसा 'उलट-फेर' हो रहा है जैसे कोयल की आँखों में हुआ करता है।

चेटी—आप ऐसे ही बने रहें।

विदूषक—आप जाइये। मैं भी महाराज के पास चलता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च ।)

चेटी--किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ दमदवणं आअदा ? [किंनिमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता ?]

पद्मामावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुह्मआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा न वेति ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालन्तरिदेहिं विअ मोतिआलम्बएहिं आइदाणि कुसुमेहिं [भर्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिताः कुसुमैः ।]

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणि विलम्बेसि ? [हला ! यद्येवं, किमिदानीं विलम्बसे ?]

चेटी—तेण हि इमस्सि सिलावट्टुए मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ । जाव अहं वि कुसुमावचअं करोमि [तेन हि अस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि]

शेफालिगुल्मकाः=शेफालिकास्तम्बकाः । "शेफालिका तु सुबहा निर्गुण्डी नीलिका च सा" इत्यमरः । कुसुमिताः=पुष्पिताः । प्रवालान्तरितैरिव=विद्रुमान्तरालारोपितैरिव । मौक्तिकलम्बिकैः=मुक्ताकण्ठाभरणविशेषैः । आचिताः= व्याप्ताः ।

(प्रवेशक समाप्त ।)

(सेविकाओं के साथ पद्मावती तथा आवन्तिका वेष में वासवदत्ता का प्रवेश)

चेटी—राजकुमारी प्रमदवन में किसलिए पधारी हैं ?

पद्मावती—सखी ! वे शेफालिकाके गुच्छे खिले हैं या नहीं यही देखने को ।

चेटी—राजकुमारी ! वे खिल गये । मूंगों से भरी मोतियों की माला के समान वे फूलों से भर गये हैं ।

पद्मावती--सखी यदि ऐसा है तो फिर अब देर क्यों करती हो ?

चेटी--तो इस शिलापट्टपर राजकुमारी कुछ देर बैठें । तब तक मैं भी कुछ फूल बटोर लूं ।

पद्मावती—अय्ये किं एत्थ उवविसामो ? [आर्ये ! किमत्रोपविशावः ?]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभे उपविशतः ।)

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमणसिलावट्ट-एहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अञ्जलिं ! [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका अर्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम् ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो । विइत्तदा कुसुमाणं । पेक्खदु पेक्खदु अय्या [अहो ! विचित्रता कुसुमानाम् । पश्यतु पश्यत्वार्या ।]

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं । [अहो ! दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

शिलापट्टके = प्रस्तरफलके, पाषाणनिर्मितासने इति भावः । अर्धमनः-शिलापट्टकैरिव = अर्धनागजिह्विकाखण्डकैरिव । "मनःशिलामनोगुप्तामनोह्वा नागजिह्विका" इत्यमरः । मनः शिला रक्तवर्णो धातुविशेषः लोके "मैनसिल" इति नाम्ना प्रसिद्धः । अञ्जलिम् = संयुक्तकरपुटकम् । विचित्रता = श्वेतपुष्पेषु रक्तिमसम्मिश्रणेन वैचित्र्यमिदमेव च सौन्दर्यमत एवाश्चर्योद्‌गारः । दर्शनीयता = रमणीयता ।

टि०—आवन्तिकायाः वेषः (ष० त०), तं धारयतीति तच्छीला–आवन्तिका-वेष + धृ + णिच् + णिनि + ङीप् = आवन्तिकावेषधारिणी । मौक्तिकानां लम्ब-कानि (ष० त०) तैः + मौक्तिकलम्बकैः । अव + चि + लृट् = अवचेष्यामि ।

पद्मावती—आर्यें ! क्या हम यहाँ बैठें ?

वासवदत्ता—हाँ, ऐसा ही हो ।

(दोनों बैठ जाती हैं ।)

चेटी—(फूलों को इकट्ठा कर) देखें, देखें राजकुमारी ! मनःसिला के टुकड़ों की भाँति शेफालिका के फूलों से भरी हुई मेरी अञ्जलि को देखें ।

पद्मावती—(देखकर) अहा, कैसे रंग-बिरंगे हैं ये फूल ? आर्या ! देखिए, देखिए ।

वासवदत्ता—अहो ! ये फूल तो दर्शनीय हैं !

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ? [भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि ?]

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽव चित्य ।]

वासदवत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ? [हला ! किंनिमित्तं वारयसि ?]

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धि पेक्खिअ सम्माणिदा भवेअं । [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धि दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ? [हला ! प्रियस्ते भर्ता ?]

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कण्ठिदा होमि । [आर्ये ! न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खर खु अहं करेमि । इअं वि णाम एवं मन्तेदि ! [दुष्करः खल्वहं करोमि । इयमपि नामैव मन्त्रयते ।]

अवचेष्यामि = अवचिनुयाम्, विध्यर्थं लृट् । अवचित्य = अवचायं कृत्वा । पुष्पप्राचुर्यम् । सम्मानिता = कुसुमसमृद्धिः = समादृता ।

विरहिता = विमुक्ता । उत्कण्ठिता = उत्सुका । दुष्करम् = कठिनम् । मन्त्रयते = परिभाषते ।

चेटी--राजकुमारी ! क्या और फूल चुनूं ?

पद्मावती--सखी ! नहीं नहीं और मत चुनो ?

वासवदत्ता--सखी क्यों रोकती हो ?

पद्मावती--आर्यपुत्र के द्वारा यहाँ आकर और इस पुष्पवृद्धि को देखकर मैं समादृत होऊं ।

वासवदत्ता--सखी तुम्हें पति प्रिय हैं ?

पद्मावती--आर्ये ! मैं नहीं जानती पर उनके बिना व्याकुल हो जाती हूँ ।

वासवदत्ता--(स्वगत) मैं निश्चय ही कठिन कार्य कर रही हूँ । यह भी तो ऐसा ही कह रही है ।

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मन्तिदं—पिओ मे भत्तेति। [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितं—प्रियो मे भर्तेति।]

पद्मावती—एक्को खु मे सन्देहो। [एकः खलु मे सन्देहः।]

वासवदत्ता—किं किं? [किं किम्?]

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो, तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति? [यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति।]

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं! [अतोऽप्यधिकम्।]

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि? [कथं त्वं जानासि?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कन्दो समुदाआरो। एव्वं दाव भणिस्सं (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो, सा सजणं ण परित्तजदि। [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः। एवं तावद् भणिष्यामि। यद्यल्पः स्नेहः, सा स्वजनं न परित्यजति।]

पद्मावती—होदव्वं [भवितव्यम्।]

अभिजातम् = कुलीनतानुरूपम्, समुदाचारमनतिक्रम्येति भावः।
समुदाचारः = आत्मगोपनरुपोऽव्यवहारः। अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः।

चेटी—राजकुमारी ने कुलीनता के अनुरूप ही कहा है कि मुझे पति प्रिय हैं।

पद्मावती—मुझे बस एक ही सन्देह है।

वासवदत्ता—क्या, क्या?

पद्मावती—जैसे मुझे आर्यपुत्र प्रिय हैं, वासवदत्ता को भी वैसे ही अथवा······?

वासवदत्ता—इससे भी अधिक।

पद्मावती—तुम कैसे जानती हो?

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात के कारण मैं मर्यादा को लांघ गई। अब ऐसा कहूँ (प्रकट) यदि प्रेम कम होता तो वह आत्मीय जनों को नहीं छोड़ती।

पद्मावती—हो सकता है।

चेटी—भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति । [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति ।]

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो । [उक्तो ममार्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं ? [ततः किं भणितम् ?]

पद्मावती—अभणिअ किञ्चि दिग्घं णिस्ससिअ तुह्णीओ संवुत्तो । [अभणित्वा किञ्चिद् दीर्घं निश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः ।]

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमिरअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदि त्ति । [तर्कयाम्यार्याया: वासवदत्ताया गुणान् स्मृत्वा दक्षिणताया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धण्णा खु ह्मि, जदि ऐव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

स्वजनम् = आत्मीयजनम्, मातापित्रादिकमिति भावः । भण = कथय । शिक्षिष्ये = शिक्षां ग्रहीष्ये । तूष्णीकः = मौनी । संवृत्तः = सञ्जातः तर्कयसि = ऊहसे ।

दक्षिणतायाः = उदारतायाः, शालीनतायाः इति भावः ।

टि०—अव + चि + क्त्वा, ल्यप् = अवचित्य । "शिक्षविद्योपादाने" + लट् = शिक्षिष्ये । निस् + श्वस् + क्त्वा, ल्यप् = निःश्वस्य । दक्षिणस्य भावो दक्षिणता, तस्याः, दक्षिण + तल् + टाप् + "विभाषागुणोऽस्त्रियाम्" इति हैतौ पञ्चमी = दक्षिणतायाः ।

चेटी—राजकुमारी ! पति से अच्छी तरह कहो कि मैं भी वीणा सीखूंगी ।

पद्मावती—मैंने आर्यपुत्र से कहा था ।

वासवदत्ता—फिर उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती—कुछ न कहकर लम्बी साँस लेकर चुप हो गये ।

वासवदत्ता—इससे तुम क्या समझती हो ?

पद्मावती—मैं समझती हूँ कि आर्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण कर शिष्टाचार के कारण वे मेरे सामने नहीं रोये ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यदि यह सत्य है तो मैं धन्य हूँ ।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

विदूषकः—हीं ! ही ! पचिअपडिअबन्धुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्जं पमदवणं । इदो दाव भवं । [ही ही ! प्रचितपतिबन्धुजीवकुसुमविरलपात-रमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अयमहमागच्छामि ।

कामेनोज्जयनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ।। १ ।।

प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयम्—संहृतस्रस्तरक्तककुसुमतनु-पतनशोभनीयम् । प्रमदवनम्=अन्तःपुरोचितोपवनम् ।

अन्वयः—तदा उज्जयिनीम्, गते, अवन्तिराजतनयाम्, स्वैरम्, दृष्ट्वा, काम्, अपि, अवस्थाम्, गते, मयि, कामेन, पञ्च, इषवः, पातिताः । अद्य अपि, तैः, हृदयम्, सशल्यम्, एव । भूयश्च, वयम्, विद्धाः । मदनः, पञ्चेषुः, यदि, अयम्, षष्ठः, शरः, कथम्, पातितः ? ।। १ ।।

व्या०—तदा=तस्मिन् समये । उज्जयिनीम्=विशालानाम्नीं पुरीम् । गते प्राप्ते । अवन्तिराजतनयाम्=प्रद्योतराजसुताम्, वासवदत्तामिति भावः । स्वैरम्=स्वेच्छानुसारम् । दृष्ट्वा=विलोक्य । कामपि=अवर्णनीयामित्याशयः । अवस्थाम्=दशाम् । गते प्राप्ते मयि उदयने विषये । कामेन=मदनेन । पञ्च इषवः=मदनस्य पञ्चबाणाः । "अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पञ्चैते

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अहा, हा ! सञ्चित और गिरे हुए बन्धूक पुष्प से प्रमदवन कितना सुन्दर लग रहा है । आप यहाँ आवें ।

राजा—मित्र वसन्तक ! यह मैं आ रहा हूँ ।

उस समय जब मैं उज्जयिनी में गया और अवन्ति राजकुमारी वासवदत्ता को जी भर कर देखा और उसे देखने से मेरी विचित्र दशा हो गई, तब कामदेव ने मुझ पर अपने पाँचों बाण चलाये । उन बाणों से आज भी मेरा हृदय विद्ध

विदूषकः—कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी, लदामण्डवं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसञ्चिदं वग्घचम्मावगुण्ठिदं विअं पव्वदतिलअं णाम सिलापट्टअं गदा भवे, आदु अधिअकडुअगन्धसत्तच्छदवणं पविट्टा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसङ्कुलं दारुपव्वदअं गदा भवे! (ऊर्ध्वमवलोक्य) ही ! ही ! सरअकालणिम्मले अन्तरिक्खे पसारिअबलदेवबाहुदंसणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति पेक्खदु दाव भवं। [कुत्र नु खलु गता तत्र भवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असन-

---

पञ्चबाणस्य सायकाः।" इत्यमरः। पातिताः=प्रेरिताः। एतेनोदयनस्य वासवदत्ताविषयकः प्रणयातिशयोऽभिव्यज्यते। अद्यापि=इदानीमपि। तैः=मदनशरैः। हृदयम्=मदीयचित्तम्। सशल्यमेव=कण्टकयुक्तमेव। भूयश्च=पुनरपि। वयं विद्धाः=अहं ताडितः। एवं च, मदनः=मनोभवः पञ्चेषुः यदि=पञ्चशरश्चेत्। अयम्=एषः। षष्ठः=पञ्चसंख्यातिरिक्तः। कथम्=केन प्रकारेण। पातितः=प्रेरितः। उपरतायामपि वासवदत्तायाम् उदयनस्य तद्विषयकोऽनुरागातिशयोऽत्र ध्वन्यते। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥१॥

टि०—प्रचितानि च तानि पतितानि (क० धा०), बन्धुजीवानि च तानि कुसुमानि (क० धा०) प्रचितपतितानि च तानि बन्धुजीवकुसुमानि (क० धा०), तेषां विरलपातः (ष० त०), तेन रमणीयम् (तृ० त०)=प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलपातरमणीयम्। पत्+णिच्+क्त=पातितः। शल्यैः सहितम् (तुल्ययोग बहु०)=सशल्यम्। पञ्च इषवो यस्य, सः (बहु०)=पञ्चेषुः।

लतामण्डपम्=लतापिहितगृहम्। उताहो=अथवा। "आहो उताहो किमुत" इत्यमरः। असनकुसुमसञ्चितम्=जीवकपुष्पाच्छादितम्। "सर्जकासनबन्धूक-

---

ही है और आज पद्मावती को देखकर मैं पुनः विद्ध हो गया हूँ। कामदेव जब 'पञ्चबाण' ही कहलाता हैं तो यह छठा बाण उसने कहाँ से फेंका ?॥ १ ॥

विदूषक—देवी पद्मावती भला कहाँ गई होगी ? लतागृह में गई होंगी या बाघ के चर्म से मढ़े हुए की भाँति असन पुष्पों से आच्छादित 'पर्वततिलक' नामक प्रस्तरखण्ड पर गई होंगी या अधिक कटु गन्धवाले सप्तच्छद वृक्षों के वन में गई होंगी या उस काष्ठ पर्वत पर गई होंगी जहाँ पशु-पक्षियों के चित्र बने हुए हैं।

कुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माऽवगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत्। ही! ही! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान्।]

राजा—वयस्य! पश्याम्येनाम्!

प्रियजीविका:" इत्यमरः। व्याघ्रचर्मावगुण्ठितम्=व्याघ्राजिनेन वेष्टितम्, पर्वततिलकम्। अधिककटुकगन्धसप्रच्छदवनम् = अतितीक्ष्णामोदयुक्तसप्तपर्णविपिनम्। "सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः" इत्यमरः। आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलम्=चित्रितपशुपक्षिव्याप्तम्। दारुपर्वतकम्=काष्ठनिर्मितपर्वतप्रतिकृतिम्। शरत्कालनिर्मले=शरत्समयस्वच्छे। प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयाम्=विस्तारितबलभद्रभुजमनोहराम्। सारसपंक्तिम्=सारसखगश्रेणीम्। समाहितम्=एकाग्रतापूर्वकम्।

टि०—असनानां कुसुमानि (ष० त०), तैः सञ्चितम् (तृ० त०)=असनकुसुमसञ्चितम्। अधिकः कटुको गन्धो येषां (बहु०), सप्तच्छदा येषां (बहु०), अधिककटुकगन्धाश्च ते सप्तच्छदाः (क० धा०), तेषां वनम्=अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनम्। मृगाश्च, पक्षिणश्च (द्वन्द्व०), आलिखिताश्च ते मृगपक्षिणः (क० धा०) तैः सङ्कुलम्, तम् (तृ० ता०)=आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलम्। बलदेवस्य बाहू (ष० त०), प्रसारितौ च तौ बलदेवबाहू (क० धा०), प्रसारितबलदेव बाहू इव दर्शनीया, ताम्=प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयाम्। "उपमानानि सामान्यवचनैः" इत्यनेन कर्मधारयसमासः।

एनाम्=सारसपङ्क्तिमिति भावः।

(आकाश की ओर देखकर) शरत्कालीन स्वच्छ आकाश में बलराम की भुजाओं के समान सुन्दर सारस पक्षियों की समान गति से चलती हुई पंक्ति को आप देखें।

राजा—मित्र! मैं इसे देख रहा हूँ।

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥ २ ॥

अन्वयः—ऋज्वायताम्, विरलाम्, नतोन्नताम्, निवर्तनेषु, सप्तर्षिवंशकुटिलाम्, निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य, अम्बरतलस्य, विभज्यमानाम्, सीमाम्, इव । एनां सारसपङ्क्तिम् पश्यामीति शेषः ॥ २ ॥

व्या—ऋज्वायताम् = सरलदीर्घाम् । विरलाम् = क्वचित्क्वचित्सावकाशाम् । नतोन्नताम् = निम्नोच्चैः क्रमेणावस्थिताम् । निवर्तनेषु = विवलनेषु, घूर्णनेषु इति भावः । सप्तर्षिवंशकुटिलाम् = सप्तर्षिसमूहवक्राम् । "मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । वशिष्ठश्चेति सप्तैते ज्ञेयाश्चित्रशिखण्डिनः "इति सप्त ऋषयः । निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य = कञ्चुकहीनसर्पजठरस्वच्छस्य । अम्बरतलस्य = आकाशपृष्ठस्य । विभज्यमानाम् = क्रियमाणविभागाम् । सीमामिव = मर्यादारेखामिव । एनां सारसपंक्ति पश्यामीति शेषः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २ ॥

टि०—ऋजुश्चासौ आयता (क० धा०) ताम् = ऋज्वायताम् । सप्त च ते ऋषयः, "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इत्यनेन संज्ञायाम् समासः, सप्तर्षीणां वंशः (ष० त०), स इव कुटिला (उपमानपूर्वपदसमासः), ताम् = सप्तर्षिवंशकुटिलाम् । निर्मुच्यते इति निर्मुच्यमानः = निर् + मुच् + कर्मणि लट्, शानच्, स चाऽसौ भुजगः (क० धा०), तस्य उदरम् (ष० त०) = तदिव निर्मलम् (उपमान क० धा०), तस्य = निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य । वि + भज् + लट् + शानच् + टाप् कर्मणि प्रयोगः = विभज्यमानाम् ।

यह कहीं सीधी कहीं चौड़ी, कहीं घनी कहीं पतली, कहीं उंची और कहीं नीची है । यह मोड़ लेने के समय सप्तर्षि तारा मंडल के समान कुटिल आकार की हो जाती है । जिसने अभी-अभी केंचुली छोड़ी हो वैसे सांप के पेट की तरह निर्मल आकाश को दो भागों में विभक्त करने वाली सीमा-रेखा जैसी यह सारसपंक्ति प्रतीत होती है ॥ २ ॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एवं कोकणदमालापण्डररमणीअं सारसपन्ति जाव समाहिदं गच्छन्ति। अम्भो। भट्टा। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारसपङ्क्ति यावत् समाहितं गच्छन्तीम्। अहो ! भर्ता ?]

पद्मावती—हं ! अय्यउत्तो। अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदंसणं परिहरामि। ता इमं दाव माहवीलदामण्डवं पविसामो। [हम् ! आर्यपुत्रः आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि। तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु। [एवं भवेत्।]

(तथा कुर्वन्ति)

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा—कथं भवान् जानाति।

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं। [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान्।]

कोकनदमालापाण्डररमणीयाम् = रक्तकमलस्रक्पीतमनोहराम्। अत्र पाण्डरः पाण्डुर एव तदुक्तं शब्दार्णवे—"पाण्डुरस्तु पीतभागार्धः केतकीधूलिसन्निभः" इति।

अपचितकुसुमान् = लूनपुष्पान्। प्रेक्षताम् = पश्यतु।

चेटी—देखिए देखिए राजकुमारी ! हल्का पीलापन लिये सफेद कमल की माला के समान सुन्दर तथा समगति से जाने वाली इस सारसपंक्ति को देखिए। अहो ! स्वामी आ गये ?

पद्मावती—हूँ। आर्यपुत्र आ गये। आर्ये ! तुम्हारे कारण ही मैं आर्यपुत्र से नहीं मिलती। तो आओ, माधवीलता कुन्ज में प्रवेश करें।

वासवदत्ता—अच्छा।

(लतामण्डप के भीतर चली जाती हैं)

विदूषक—देवी पद्मावती यहां आकर निकल गई हों।

राजा—आप कैसे जानते हैं ?

विदूषक—इन फूल-चुने शेफालिका-गुच्छकों को आप देखें।

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक !

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) वसन्तअसङ्कित्तणेण अहं पुण आणामि उज्ज इणीये वत्तामि त्ति । [वसन्तकसङ्कीर्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्ते इति ।]

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे ।

विदूषकः—भो ! तह ! (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सरअकालतिक्खो दुस्सई आदवो ता इमं दाव माहवीमण्डवं पविसामि । [भोस्तथा ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः ।]

राजा—बाढम् । गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभौ परिक्रामतः ।]

पद्मावती—एवं आउलं कत्तुकामो अय्यवसन्तओ । किं दाणि करेह्य? [एवमाकुलं कर्तुकाम आर्यवसन्तकः । किमीदानीं कुर्मः ?]

वसन्तकसंकीर्तनेन = वसन्तकेति नामोच्चारणेन । प्रतीक्षिष्यावहे = प्रतिपालयिष्यावः । शरत्कालतीक्ष्णः = शरदृतुतीव्रः ।

बाढम् = समीचीनमित्याशयः । आकुलम् = विपर्यस्तम् । कर्तुकामः = विधातु-

---

राजा—कैसे विचित्र हैं ये फूल ? वसन्तक !

वासवदत्ता—(स्वगत) वसन्तक का नाम लेने से मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं उज्जयिनी में ही होऊं ।

राजा—वसन्तक ! इसी शिलातल पर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करें ।

विदूषक—ठीक है । (बैठकर फिर उठकर) ओह ! शरद ऋतु की तीखी धूप असह्य है । आइए, इस माधवीलता के कुञ्ज में चलें ।

राजा—अच्छा आगे चलो ।

विदूषक—अच्छा ।

(दोनों घूमते हैं ।)

पद्मावती—आर्य वसन्तक तो सब चौपट करना चाहते हैं । अब क्या करें ?

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीनं ओलम्बलदं ओधूय भट्टारं वारइस्सं। [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्त्तारं वारयिष्यामि ।]

पद्मावती—एवं करेहि। [एवं कुरु।] (चेटी तथा करोति ।)

विदूषकः—अविहा अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं। [अविह अविह, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीएपुत्तेहिं महुअरेहिं पीडिदो ह्मि। [दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि ।]

कामः। मधुकरपरिनिलीनाम्=षट्पदव्याप्ताम्, अवलम्बलताम्=अवलम्बभूताम्, लतान्तराश्रयभूताम् प्रधानवल्लीमिति तात्पर्यम्। दास्याः पुत्रैः=नीचैः, पीडितोऽस्मि=व्यथितोऽस्मि। संत्रासः=भयम्। परिहार्यः=दूरीकरणीयः।

टि०—कोकनदानां माला (ष० त०), कोकनदमाला इव पाण्डरा (उपमित०), सा चासौ रमणीया (क० धा०), ताम्=कोकनदमालापाण्डररमणीयाम्। अपचितानि कुसुमानि येभ्यस्ते, तान् (बहु०)=अपचितकुसुमान्। आस्+लट्+शानच्+ईत्व=आसीनौ। मधुकरैः परिनिलीना (तृ० त०) ताम्=मधुकरपरिनिलीनाम्। अव+"धूञ् कम्पने"+क्त्वा, ल्यप्=अवधूय। "दास्याः पुत्रैः" इत्यत्र "षष्ठ्या आक्रोशे" इत्यलुक् समासः।

चेटी—राजकुमारी ! भौरों से व्याप्त इस लता को हिलाकर स्वामी को रोकती हूँ।

पद्मावती—वैसा ही करो।

(दासी वैसा ही करती है)

विदूषक—ओह ! ओह ! ठहरिए महाराज ठहरिए।

राजा—क्यों ?

विदूषक—ये नीच भौंरे मुझे तंग कर रहे हैं।

राजा—मा मा भवानेवम् ! मधुकरसंत्रासः परिहार्यः ।

पश्य—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्ताविमुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

तस्मादिहैवासिष्यावहे ।

विदूषकः – एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभावुपविशतः ।)

अन्वयः—मधुमदकलाः, मदनार्ताभिः, प्रियाभिः, उपगूढाः, मधुकराः पादन्यासविषण्णाः, वयम्, इव, कान्ताविमुक्ताः स्युः ॥ ३ ॥

व्या०—मधुमदकलाः = कुसुमरसमदास्फुटमधुरशब्दाः । "ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कलः" इत्यमरः । मदनार्ताभिः = मन्मथपीडिताभिः । प्रियाभिः = वल्लभीभिः, भ्रमरीभिरित्याशयः । उपगूढाः = आलिङ्गिताः । मधुकराः=षट्पदाः । पादन्यासविषण्णाः = चरणनिक्षेपखिन्नाः, सन्त इति शेषः । वयमिव = यथाहं तथैवेति भावः । कान्ताविमुक्ताः=प्रियाविरहिताः । स्युः=भवेयुः । आर्यावृत्तम् ॥ ३ ॥

टि०—मधुनो मदः (ष० त०), कलः अस्ति येषां ते कलाः—"अर्श आदिभ्योऽच्" इत्यच् प्रत्ययः । मधुमदेन कलाः (तृ० त०) = मधुमदकलाः । उप + गुह् + क्त = उपगूढाः । वि + सद् + क्त=विषण्णाः ।

आसिष्यावहे = उपवेक्ष्यावः ।

राजा—नहीं-नहीं, तुम ऐसा मत करो । भौंरों को डराना नहीं चाहिए ।

देखो, मधुरस को पीने के कारण मत्त होकर अस्पष्ट गुञ्जार करते हुए, तथा कामपीड़ित प्रियाओं से आलिङ्गित ये भौंरे हमारे पांव की आहट से डरे हुए हमारी ही तरह प्रियावियुक्त हो जायेंगे ॥ ३ ॥

इसलिए हम दोनों यहीं बैठें ।

विदूषक—ऐसा ही हो ।

(दोनों बैठते हैं ।)

चेटी--भट्टिदारिए ! रुद्धा खु ह्म वयं । [भर्तृदारिके ! रुद्धाः खलु स्मो वयम् !

पद्मावती—दिट्ठिआ उपविट्ठो अय्यउत्तो ! [दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ पकिदित्यसरीरो अय्यउत्तो ! [दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी । [भर्तृदारिके ! साश्रुपाता खल्वार्याया दृष्टिः ।]

वासवदत्ता—एषा महुअराणं खु अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी । [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुम-पतितेन सोदका मे दृष्टिः ।]

पद्मावती--जुज्जइ । [युज्यते]

विदूषकः--भो ! सुण्णं खु इदं पमदवनं । पुच्छिदव्वं किञ्चिअत्थि । पुच्छामि भवन्तं । [भोः ! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम् ! प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति । पृच्छामि भवन्तम् ।]

रुद्धाः = प्रतिरुद्धाः । दिष्ट्या + दैवेन । प्रकृतिस्थशरीरः = स्वस्थकायः । साश्रुपाता = बाष्पपतनयुक्ता । मधुकराणामविनयात् = भ्रमराणां धृष्टत्वात् । काशकुसुमरेणुना=इक्षुगन्धपुष्परजसा । "अथोकाशमस्त्रियाम् । इक्षुगन्धा पोटगल पुंसि" इत्यमरः सोदका = सजला, अश्रुयुक्तेति भावः । युज्यते = संभाव्यते । शून्यम् = रिक्तम् । प्रमदवनम्=अन्तःपुरोद्यानम् । छन्दतः = आशयतः । "अभि-

---

चेटी--राजकुमारी ! हम लोग रोक ली गई हैं ।

पद्मावती--सौभाग्य से आर्यपुत्र बैठ गये ।

वासवदत्ता--(स्वगत) सौभाग्य से आर्यपुत्र स्वस्थ हैं ।

चेटी--राजकुमारी ! आर्या आवन्तिका की आँखों में आँसू भर आये हैं !

वासवदत्ता--मधुकरों की धृष्टता के कारण गिरे हुए काशपुष्पराग से मेरी आँखें सजल हो गई हैं ।

पद्मावती--हाँ, ऐसा ही है ।

विदूषक--महाराज ! यह प्रमदवन सूना है । मैं कुछ पूछना चाहता हूँ । आपसे पूछूँ ?

राजा--छन्दतः।

विदूषकः--का भवदो पिआ। तदाणिं तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणिं पदुमावदी वा। [का भवतः प्रिया ? तदानीं तत्र भवती वासवदत्ता इदानीं पद्मावती वा।]

राजा--किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

पद्मावती--हला ! जादिसे सङ्कटे णिक्खित्तो अय्यउत्तो। [हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः।]

वासवदत्ता--(आत्मगतम्) अहं अ मन्दभाआ। [अहं च मन्दभागा।]

विदूषकः--सेरं सेरं भणादु भवं। एक्का उवरदा, अवरा असण्णि-

प्रायश्छन्द आशयः" इत्यमरः। प्रिया=वल्लभा, प्रियतरेति भावः।

टि०--आस्+लृट्+वहि=आसिष्यावहे। प्रकृतौ तिष्ठतीति प्रकृतिस्थम्=प्रकृति+स्था+क। प्रकृतिस्थं शरीरं यस्य सः (बहु०)=प्रकृतिस्थशरीरः। अश्रुणः पातः (ष० त०) अश्रुपातः, अश्रुपातेन सहिता (तुल्ययोग बहु०)=साश्रुपाता। काशस्य कुसुमम् (ष० त०), तस्य रेणुः (ष० त०), तेन=काशकुसुमरेणुना। प्रष्टुं योग्यम् प्रच्छ्+तव्यत्=प्रष्टव्यम्। छन्दशब्दात् "अपादाने चाऽहीयरुहोः" इत्यनेन तसि=छन्दतः।

बहुमानसङ्कटे=अत्यधिकसम्मानापदि। न्यस्यति=स्थापयति। स्वैरं स्वैरं=स्वच्छन्दतानुसारमित्यर्थः। एका=वासवदत्ता। उपरता=मृता। अपरा=

राजा--जो चाहे पूछो।

विदूषक--आपको कौन अधिक प्रिय है ? उस समय की वासवदत्ता या इस समय की पद्मावती ?

राजा--अब क्यों आप मुझे प्रेमसंकट में डाल रहे हैं।

पद्मावती--सखी ! कैसे संकट में आर्यपुत्र पड़ गये।

वासवदत्ता--(स्वगत) और अभागी मैं भी।

विदूषक--आप संकोचरहित होकर कहें। एक तो मर गई और दूसरी पास नहीं है।

हिदा । [स्वैरं स्वैरं भणतु भवान् । एकोपरता, अपरा असन्निहिता ।]

राजा--वयस्य न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः !

पद्मावती--एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण । [एतावता भणितमार्यपुत्रेण ।]

विदूषकः--भो ! सच्चेण सवामि, कस्स वि ण आचक्खिस्सं । एसा सन्दट्ठा मे जीहा । [भोः ! सत्येन शपे, कस्मा अपि नाख्यास्ये । एषा सन्दष्टा मे जिह्वा ।]

राजा--नोत्सहे सखे ! वक्तुम् ।

पद्मावती--अहो ! इमस्स पुरोभाइदा । एत्ताएण हिअअं ण जाणादि । [अहो ! अस्य पुरोभागिता । एतावता हृदयं न जानाति ।]

विदूषकः--किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं ! ऐसो रुद्धो अत्त भवं । [किं न भणति मम? अनाख्यायाऽस्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम् । एष रुद्धोऽत्र भवान् ।]

राजा--किं बलात्कारेण ?

पद्मावती । असन्निहिता = असमीपस्था । मुखरः = वाचालः, अनियन्त्रितजिह्वः इतिभावः । सत्येन शपे सत्यं प्रमाणीकृत्य शपथं करोमि । सन्दष्टा=दन्तपीडनेन नियन्त्रिता ।

पुरोभागिता = निर्बन्ध आग्रह इत्याशयः । अनाख्याय = अकथयित्वा । बलात्कारेण = प्रसभेन । "प्रसभं तु बलात्कारो हटः" इत्यमरः । वयस्यभावेन=

राजा--मित्र ! मैं नहीं कहूँगा । तुम तो मुँहफट हो ।

पद्मावती--आर्यपुत्र ने इतने में ही कह दिया ।

विदूषक--महाराज ! से सत्य की शपथ लेकर कहता हूँ कि किसी से भी नहीं कहूँगा । यह अपनी जीभ मैंने काटी ।

राजा--मित्र ! मैं कहने को उत्साहित नहीं हो पा रहा हूँ ।

पद्मावती--ओह, इसका हठ ! इतने पर भी मन की बात नहीं समझा ।

विदूषक-- क्यों नहीं मुझसे कहते ? बिना कहे इस शिलाखंड से एक कदम भी नहीं जा सकते । आप यहीं रोके गये ।

राजा--क्या जबर्दस्ती ?

विदूषकः--आम, बलक्कारेण। [आम् बलात्कारेण।]

राजा--तेन हि पश्यामस्तावत्।

विदूषकः--पसीददु पसीददु भवं। वअस्सभावेण साविदो सि, जइ सच्चं ण भणासि। [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान्। वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि।]

राजा--का गतिः। श्रूयताम्--

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति॥ ४॥

मित्रभावेन। का गतिः=कः उपायः।

टि०--बहुमानेन सङ्कटः (तृ० त०) तस्मिन्=बहुमानसङ्कटे। नि+"असुक्षेपणे"+लट्, तिप्=न्यस्यति। मन्दो भागो भाग्यं यस्याः, सा (बहु०)= मन्दभागा। निन्दितं मुखं यस्य सः,-मुख शब्दात् "र प्रकरणेखमुखकुञ्जेभ्यः उपसंख्यानम्" इति वार्तिकेण र प्रत्ययः=मुखरः। पुरो भजते इति पुरोभागी= पुरस्-उपपदपूर्वकाद् 'भज् सेवायाम्' धातोः 'सम्पृचानु' इत्यादि सूत्रेण घिनुणि, पुरोभागी, पुरोभागिनोभावः इत्यर्थे पुरोभागिन्+तल्+टाप्=पुरोभागिता।

अन्वयः—रूपशीलमाधुर्यैः, यद्यपि, पद्मावती, मम, बहुमता, तु, वासवदत्ताबद्धम्, मे, मनः, न, हरति, तावत्॥ ४॥

व्या०—रूपशीलमाधुर्यैः=सौन्दर्यसच्चरित्रप्रीतिविशेषैः। यद्यपि, पद्मावती=मगधराजपुत्री। मम=उदयनस्य। बहुमता=अत्यर्थं प्रिया। तु=परन्तु। वासवदत्ताबद्धम्=वासवदत्तासक्तम्। मे=मम। मनः=चित्तम्। न हरति= नापकर्षति। पद्मावत्या रूपशीलादिषु गुणेषु सत्स्वपि मे मनोऽद्यापि वासवदत्ता-

---

विदूषक—हाँ जबर्दस्ती ही।

राजा—तो फिर देख ही लेते हैं।

विदूषक—प्रसन्न हों प्रसन्न हों। यदि सत्य न कहें तो आपको मेरी मैत्री की सौगन्ध।

राजा—क्या चारा है। अच्छा सुनो—

यद्यपि रूप, शील एवं माधुर्यादि गुणों के कारण पद्मावती मुझे बहुत मान्य

वासवदत्ता--(आत्मगतम्)भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अह्मो ! अञ्ञादवासं वि एत्थं बहुगुणं सम्पज्जइ । [भवतु भवतु । दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।]

चेटी--भट्टिदारिए ! अदक्खिण्णो खु भट्टा । [भर्तृदारिके ! अदाक्षिण्यः खलु भर्ता ।]

पद्मावती--हला ! मा मा एव्वं ! सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो, जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि । [हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति ।]

यामेवासक्तं वर्तते इत्यर्थः आर्यावृत्तम् ।। ४ ।।

वेतनम् = मूल्यम् । अस्य परिखेदस्य = विरहेऽनुभूयमानस्य दुःखस्य । अज्ञातवासः = गुप्तवासः । बहुगुणः = अनेकफलसमन्वितः । अदाक्षिण्यः = दाक्षिण्यगुणविहीनः । दाक्षिण्यं चोक्तम् साहित्यदर्पणे--"एषु (नायकेषु) त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः ।" ३।३१। द्वित्रासु त्रिचतुरासु वा नायिकासु तुल्यानुरागो दक्षिण-नायक इत्यर्थः । अथवा परच्छन्दानुवर्तित्वं दाक्षिण्यम्, तथा न भवति यः स एव अदाक्षिण्यः अभिजनसदृशम्=स्ववंशानुरूपम् ।

टि०—बहु (अधिकं यथा तथा) मता, "सुप्सुपेति समासः=बहुमता । रूपं च शीलं च माधुर्यं चेति रूपशीलमाधुर्याणि (द्वन्द्व०) तैः = रूपशीलमाधुर्यैः । वासवदत्तायां बद्धं (स० त०) तत् = वासवदत्ताबद्धम् । न ज्ञातः अज्ञातः (नञ्०) अज्ञातश्चासौ वासः (क० धा०) = अज्ञातवासः । बहुगुणो यस्य (बहु०) सः बहुगुणः । दक्षिणस्य भावो दाक्षिण्यम् दक्षिण + ष्यञ् । अविद्यमान दाक्षण्यं यस्य (नञ् बहु०) सः-अदाक्षिण्यः ।

है पर वासवदत्ता पर आसक्त मेरे मन को वह आकर्षित नहीं कर पाती ।। ४ ।।

वासवदत्ता--(स्वगत) बस, मुझे दुःख का पुरस्कार मिल गया । ओह ! यहाँ का अज्ञातवास भी गुणवान् ही लग रहा है ।

चेटी--राजकुमारी ! स्वामी शिष्ट नहीं हैं ।

पद्मावती—ऐसा मत कहो । आर्यपुत्र शिष्ट ही हैं जो अब भी आर्या वासवदत्ता के गुणों को स्मरण कर रहे हैं ।

वासवदत्ता--भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मन्तिदं। [भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।]

राजा--उक्तं मया। भवानिदानीं कथयतु। का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा।

पद्मावती-- अय्यउत्तो वि वसन्तओ संवुत्तो। [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः ।]

विदूषकः--किं मे विप्पलविदेण। उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ। [किं मे विप्रलपितेन । उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते ।]

राजा-- वैधेय ! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे ?

विदूषकः-- किं मं पि बलक्कारेण ? [किं मामपि बलात्कारेण ?]

राजा--अथ किम्, बलात्कारेण।

विदूषकः--तेण हि ण सक्कं सोदुं। [तेन हि न शक्यं श्रोतुम् ।]

राजा-- प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः, स्वैरं स्वैरमभिधीयताम्।

विदूषकः--इदाणिं सुणादु भवं। तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा। तत्तहोदी। पदुमावदी तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहङ्कारा महुरवाआ

विप्रलपितेन = अनर्थकवचनेन। बहुमते = अधिकसम्मते। महाब्राह्मणः =

वासवदत्ता--भद्रे ! तुमने कुलीनता के अनुरूप ही ऐसा कहा है।

राजा--मैंने कहा। अब आप कहें। उस समयकी वासवदत्ता या इस समय की पद्मावती में आपको कौन अधिक अच्छी लगती है ?

पद्मावती--आर्यपुत्र भी वसन्तक ही हो गये।

विदूषक--मेरे बड़बड़ाने से क्या लाभ ? मेरे लिए तो दोनों ही मान्य हैं।

राजा--मूर्ख ! मुझसे हठपूर्वक सुनकर अब तुम क्यों नहीं बतला रहे हो ?

विदूषक--क्या मुझसे भी बलपूर्वक सुनना चाहते हैं ?

राजा--हाँ, बलपूर्वक ही।

विदूषक--तब आप भी नहीं सुन सकते।

राजा--महाब्राह्मण प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। स्वेच्छापूर्वक ही कहो।

विदूषक--अब आप सुनें। देवी वासवदत्ता मुझे बहुत मान्य हैं। देवी

सदक्खिणा। अअं च अवरो महन्तो गुणो, सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चु-ग्गच्छइ वासवदत्ता–कहिं णु खु गदो अय्यवसन्तओ त्ति। [इदानीं शृणोतु भवान्। तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता। तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अकोपना अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति वासवदत्ता–कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति।]

वासवदत्ता—भोदु भोदु, वसन्तअ! सुमरेहि दाणिं एदं। [भवतु भवतु, वसन्तक! स्मरेदिदानीमेतत्।]

राजा—भवतु भवतु वसन्तक! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासव-दत्तायै।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता! कहिं वासवदत्ता? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता। [अविहाः वासवदत्ता? कुत्र वासवदत्ता? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता।]

श्रेष्ठविप्रः। परिहासेनैतत्कथनम्। तरुणी=युवतिः। दर्शनीया=दर्शनयोग्या, सुन्दरीति भावः। अकोपना=कोपरहिता। अनहङ्काराः=अहङ्कारविवर्जिता। मधुरवाक्=मधुरभाषिणी, प्रियवादिनीति भावः। सदाक्षिण्या=उदारा, सुसंस्कृता वेत्यर्थः।

स्निग्धेन भोजनेन=स्वादिष्टेन भोजनेन। प्रत्युद्गच्छति=सम्मुखमागत्य सम्भावयति। अविहा=खेदव्यञ्जकमव्ययमिदम्।

टि०—महांश्चासौ ब्राह्मणः (क० धा०)=महाब्राह्मणः। दृश्+अनीयर्+टाप्=दर्शनीया। न कोपना (नञ्०)=अकोपना। अविद्यमानोऽहङ्कारो

पद्मावती युवती, सुन्दरी, अक्रोधी, अहङ्काररहित, मधुर बोलने वाली और उदार है। इनमें एक और बड़ा गुण यह है कि स्वादिष्ट भोजन से मेरा स्वागत करती हैं और पुकारती हैं कि–"आप वसन्त कहाँ गये?"

वासवदत्ता–अच्छा, अच्छा वसन्तक! अब याद करो यह सब।

राजा—अच्छा, अच्छा वसन्तक! यह सब मैं देवी वासवदत्ता से कहूँगा।

विदूषक—हाय! वासवदत्ता! कहाँ है वासवदत्ता? उन्हें मरे कितने दिन बीत गये।

राजा—(सविषादम्) एवम् ! उपरता ।

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निःसृता ॥ ५ ॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिसंसेण विसंवादिओ । [रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसवादितः ।]

यस्याः सा (नञ् बहु०) = अनहङ्कारा । दाक्षिण्येन सहिता (तुल्ययोग-बहुव्रीहिः) – सदाक्षिण्या ।

अन्वयः—अनेन, परिहासेन, मे, मनः, त्वया, व्याक्षिप्तम् । ततः इयम्, वाणी, पूर्वाभ्यासेन, तथा, एव, निःसृता ॥ ५ ॥

व्या०—अनेन = पूर्वोक्तेन । परिहासेन = केलियुक्तवाक्येन, नर्मप्रसङ्गेनेति भावः । "द्रवकेलिपरीहासाः क्रीडा खेला च नर्म च" इत्यमरः । मे मम = मम-चित्तम् । त्वया = वसन्तकेन । व्याक्षिप्तम् = अन्यथावृत्तिकृतम् । ततः = तस्मा-त्कारणात् । इयम् वाणी = एषा वाक् । पूर्वाभ्यासेन = वासवदत्ताकालिका-भ्यासेन । तथा एव = पूर्वसमयतुल्या एव । निःसृता = निर्गता । यथा पूर्वं वासवदत्ताविरुद्धं किमपि श्रुत्वा "तस्यै कथयिष्ये" इति वाक्यम् मुखान्निःसृतं भवति स्म तथैवेदानीं "सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै" इतीयं वाणी मुखान्निर्गतेति भावः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ५ ॥

कथायोगः = कथनसम्बन्धः । नृशंसेन = क्रूरेण । "नृशंसो घातुकः क्रूरः" इत्यमरः । विसंवादितः = अन्यथाकृतः । अनतिक्रमणीयः = अनुल्लङ्घनीयः ।

टि०—वि + आङ् + क्षिप् + क्त = व्याक्षिप्तम् । पूर्वश्चासौ अभ्यासः (क० धा०) तेन = पूर्वाऽभ्यासेन । वि + सम् + वद् + णिच् + क्त = विसंवादितः । वि + श्वस् + क्त + टाप् = विश्वस्ता । धृ + णिच् + लोट्, तिप् = धारयतु । वयसा तुल्यः वयस्यः–वयस् + यत् । तत्सम्बुद्धौ = वयस्य !

राजा–(शोक पूर्वक) हाँ । वासवदत्ता तो चल बसी मित्र ! तुमने इस परिहास से मेरे मन को व्याकुल कर दिया । इसीलिए पूर्वाभ्यास के कारण मेरे मुंह से यह बात निकल गई ॥ ५ ॥

पद्मावती–कैसा मनोरम कथा–प्रसंग इस क्रूर विदूषक ने बिगाड़ दिया ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु, विस्सत्थह्मि । अदो ! पिअं णाम, ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि । [भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि । अहो ! प्रियं नाम, इदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते ।]

विदूषकः—धारेदु धारेदु भवं । अणदिक्कमणीओ हि विही । ईदिसं दाणिं एवं । [धारयतु धारयतु भवान् । अनतिक्रमणीयो हि विधिः । ईदृशमिदानीमेतत् ।]

राजा—वयस्य ! जानाति भवानवस्थाम् ! कुतः ।

दुखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं प्राप्ताऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥६॥

अन्वयः—बद्धमूलः, अनुरागः, दुःखम्, त्यक्तुम् । स्मृत्वा, स्मृत्वा, दुःखम्, नवत्वम्, याति । तु, एषा, यात्रा, यत्, इह, बाष्पम्, विमुच्य, बुद्धिः, प्राप्तानृण्या, (सती) प्रसादम्, याति ॥ ६ ॥

व्या०—बद्धमूलः = दृढमवस्थितः । अनुरागः = प्रणयः । दुःखम् = कठिनं यथा स्यात्तथा । त्यक्तुम् = मोक्तुम्, शक्य इति शेषः । स्मृत्वा स्मृत्वा = पुनः पुनःस्मरणं कृत्वा । दुःखम् = प्रियजनवियोगरूपं कष्टम् । नवत्वम् = नूतनत्वम् । याति = प्राप्नोति । अनुभूतं दुःखं मुहुःस्मरणेन नूतनं भवतीत्याशयः । तु = किन्तु । एषा = इयम् । यात्रा = लोकव्यवहारः । यत्, इह = अस्मिन् संसारे । बाष्पम् = अश्रु । विमुच्य = विसृज्य । बुद्धिः = निश्चयात्मकं मनः । प्राप्तानृण्या = प्राप्तानृणत्वा, कृतानुरागनिष्कृतिः सतीति भावः । प्रसादम् = शान्तिम्, उद्वेगराहित्यमित्यर्थः । याति = प्राप्नोति । शालिनीवृत्तम् ॥ ६ ॥

वासवदत्ता—(स्वगत) बस बस, विश्वस्त हो गई । अहो ! कितनी प्रिय है यह बात, जिसे मैं परोक्ष में सुन रही हूँ ।

विदूषक—धैर्य रखिए । धैर्य रखिए महाराज ! भाग्य का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता । यह तो अब ऐसा ही है ।

राजा—मित्र ! तुम मेरी अवस्था को नहीं जानते । क्योंकि—

दृढ़ प्रेम को त्यागना बहुत कठिन है । बार-बार स्मरण करने से दुःख नया

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोदो मुहं। जाव मुहोदअं आणेमि। (निष्क्रान्तः।) [अश्रुपातविलन्नं खलु तत्र भवतो मुखम्। यावन्मुखोदकमानयामि।]

पद्मावती—अय्ये! बप्फाउलपडन्तरिदं अय्यउत्तस्स मुहं। जाव णिक्कमह्म। [आर्ये! बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम्। यावन्निष्क्रमामः।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु। अहव चिट्ठ तुवं। उक्कण्ठिदं भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं। अहं एव्व गमिस्सं। [एवं भवतु। अथवा तिष्ठ त्वम्। उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम्। अहमेव गमिष्यामि।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि। उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ। [सुठ्ष्वार्या भणति। उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका।]

आश्रुपातक्लिन्नम् = बाष्पपतनार्द्रम्। मुखोदकम् = मुखप्रक्षालनार्थं जलमित्यर्थः। बाष्पाकुलपरान्तरितम् = अश्रुव्याप्तवसनाच्छादितम्। निष्क्रमामः = निर्गच्छामः। उत्कण्ठितम् = दुःखपर्याकुलम्। उज्झित्वा = त्यक्त्वा। अयुक्तम् = अनुचितम्। सुष्ठु = समीचीनम्। उपसर्पतु = समीपं गच्छतु।

टि०—बद्धं मूलं यस्य (बहु०) सः = बद्धमूलः। अविद्यमानं ऋणं यस्य स अनृणः (नञ् बहु०), अनृणस्य भावः = आनृण्यम्—अनृण + ष्यञ्। प्राप्तम् आनृण्यं यया सा (बहु०) = प्राप्तानृण्या। अश्रूणां पातः (ष० त०) तेन

हो जाता है। लोकव्यवहार यही है कि यहाँ आँसू बहाकर प्रेम से उऋण होकर मन शान्त हो जाता है॥ ६॥

विदूषक—आपका मुँह अश्रुपात के कारण गीला हो गया है। मैं मुँह धोने के लिए जल ले आऊँ। (चला जाता है।)

पद्मावती—आर्ये! आर्यपुत्र का मुँह आँसुओं से भर गया है और वे उसे वस्त्र से ढँके हुए हैं। अब हम निकल चलें।

वासवदत्ता—ठीक है। अथवा तुम यहीं ठहरो। दुःखी स्वामी को छोड़कर तुम्हारा जाना उचित नहीं है। मैं ही चली जाती हूँ।

चेटी—आप ठीक कहती हैं। राजकुमारी अपने स्वामी के पास जायें।

पद्मावती—किं णु खु पविसामि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

वासवदत्ता—हला ! पविस । (इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता ।) [हला प्रविश ।]

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा ।) एसा तत्तहोदी पदुमावदी ! [एषा तत्रभवती पद्मावती !]

पद्मावती—अय्य ! वसन्तअ ! किं एदं ? [आर्य ! वसन्तक । किमेतत् ?]

विदूषकः—एदं इदं । इदं एदं । [एतदिदम् । इदमेतद् ।]

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्यं भणतु ।]

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेण सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं । ता गह्णदु होदी इदं मुहोदअं । [भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्र भवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम् ।

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो

क्लिन्नं (तृ० त०)=अश्रुपातक्लिन्नम् । बाष्पेण आकुलः (तृ० त०) स चासौ परः (क० धा०) तेन अन्तरितम् (तृ० त०)=बाष्पाकुलपरान्तरितम् ।

वातनीतेन = वायुप्रापितेन । काशकुसुमरेणुना = इक्षुगन्धपुष्पपरागेण । साश्रुपातम् = अश्रुपातपूरितम् । सदाक्षिण्यस्य = दाक्षिण्यगुणयुक्तस्य, सुसंस्कृतस्य, शिष्टाचारयुक्तस्येत्यर्थः । परिजनः = अनुचरः । अपवार्य=अपवारितं विधाय,

---

पद्मावती—क्या मैं उनके पास जाऊँ ?

वासवदत्ता—सखी ! जाओ । (ऐसा कहकर निकल जाती है ।)

(प्रवेश करके)

विदूषक—(कमल के पत्ते में जल लेकर) यह देवी पद्मावती ?

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—वह यह है, यह वह है ।

पद्मावती—कहो कहो, श्रीमान् जी कहो ।

विदूषक—आर्ये ! काशपुष्प की धूलि आँख में पड़ जाने से राजा का मुँह आँसुओं से भर गया है । आप मुँह धोने के लिए यह जल लीजिए ।

पद्मावती—(स्वगत) अहो ! सुसंस्कृत व्यक्ति का सेवक भी सुसंस्कृत है

वि सदक्खिणो एव्व होदि । (उवेत्य) जेदु अय्यसत्तो । इदं मुहोदअं । [अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । जयत्वार्यपुत्रः । इदं मुखोदकम् ।]

राजा--अये ! पद्मावती ? (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषकः--(कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

राजा--साधु वसन्तक ! साधु । (आचम्य) पद्मावति आस्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति ।) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

राजा--पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ! ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥ ७ ॥

अन्यस्याश्रव्यत्वं कृत्वेति भावः । आस्यताम्=उपविश्यताम् ।

टि०—दाक्षिण्येन सहितः, तस्य (तुल्ययोगबहु०)=सदाक्षिण्यस्य । अप+वृ+णिच्+क्त्वा, ल्यप्=अपवार्य ।

अन्वयः—हे भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण, वाताविद्धेन, काशपुष्पलवेन, इदम्, मम, मुखम्, साश्रुपातम् ।। ७ ।।

व्या०—हे भामिनि=हे कोपने ! शरच्छशाङ्कगौरेण=शरत्कालीनसुधाकरशुभ्रेण । वाताविद्धेन = वायुप्रेरितेन । काशपुष्पलवेन=इक्षुगन्धकुसुमलेशेन ।

होता है । (पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो । यह मुंह धोने के लिए जल है ।

राजा--अरे पद्मावती ! (पद्मावती की ओर मुंह फेरकर) वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक--(कान में) यह ऐसा ही ।

राजा--ठीक है वसन्तक ! ठीक है । (आचमन करके) पद्मावती ! बैठो ।

पद्मावती--आर्यपुत्र की जो आज्ञा । (बैठती है ।)

राजा--पद्मावती !

सुन्दरी ! हवा से उड़ाये गये शरत्कालीन चन्द्रमा जैसे शुभ्र काशपुष्प के कण से यह मेरा मुख अश्रुपात से युक्त है ।। ७ ।।

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवदोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥ ८ ॥

विदूषकः--उइदं तत्तहोदी मअधराअस्स अवरह्लकाले भवन्तं अग्गदो करिअ सुहिज्जजणदंसणं । सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उप्पादेदि । ता उठ्ठदु दाव भवं । [उचितं तत्रभवती मगधराजस्यापराह्ण-काले भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

इदम् = एतत् । मम = मे । मुखम् = वदनम् । साश्रुपातम् = बाष्पपतनयुक्तम् । अस्तीति शेषः । अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः--नवोद्वाहा, इयम्, बाला, सत्यम्, श्रुत्वा, व्यथाम्, व्रजेत् । इयम्, कामम्, धीरस्वभावा, तु, स्त्रीस्वभावः, कातरः ॥ ८ ॥

व्या०--नवोद्वाहा = नूतनपरिणीता । इयम् = एषा । बाला = युवतिः, अप्रौढा पद्मावतीति भावः । सत्यम् = तथ्यम् । श्रुत्वा = आकर्ण्य । व्यथाम् = पीडाम् । व्रजेत् = प्राप्नुयात् । यद्यपि, इयम् = पद्मावती । कामम् = अत्यन्तम् । धीरस्वभावा = धैर्यशालिनी, वर्तते इति शेषः । तु = किन्तु । स्त्रीस्वभावः = नारी-प्रकृतिः । कातरः = भीरुकः, भवतीति शेषः । अर्थान्तरन्यासालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

टि०--शशः अङ्को यस्य, सः शशांकः (बहु०) शरदि शशांकः (स० त०), स इव गौरः (उपमित क० धा०) तेन = शरच्छशांकगौरेण । नवः उद्वाहो यस्याः सा (बहु०) = नवोद्वाहा । धीरः स्वभावो यस्याः, सा (बहु०) = धीरस्वभावा । अपराह्णकाले = दिवसस्य तृतीयप्रहरे । प्रतीष्टः = अङ्गीकृतः । उत्पादयति

(स्वगत) यह बाला नव-विवाहिता है । सत्य को सुनकर यह दुःखी हो जायेगी । यद्यपि यह धैर्यशालिनी है, पर स्त्री-स्वभाव तो भीरु हुआ करता है ॥ ८ ॥

विदूषक--श्रीमान् मगधराज दर्शक ने अपराह्ण काल में आपको साथ लेकर मित्रों से भेंटना उचित समझा है । तो अब आप उठें । क्योंकि यदि सम्मान का बदला सम्मान से दिया जाय तो प्रेम बढ़ता है ।

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ ९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

—: * :—

=जनयति । प्रथमः कल्पः = मुख्यं विधानम् ।

अन्वयः—लोके, विशालानाम्, गुणानाम्, सत्काराणाम्, च कर्त्तारः, नित्यशः, सुलभाः, तु, विज्ञातारः, दुर्लभाः ॥ ९ ॥

व्या०—लोके = संसारे । विशालानाम् = महताम् । गुणानाम् = शौर्यादीनाम् । सत्काराणाञ्च = सम्मानानाञ्च । कर्त्तारः = प्रयोजकाः । नित्यशः = सततम् । सुलभाः = बहुलं लभ्यन्ते । तु = किन्तु । विज्ञातारः = परकृतसम्मानज्ञाः । दुर्लभाः = विरलाः, सन्तीति शेषः । गुणानां सम्मानानाञ्च कर्त्तारो जगति सुलभाः परं तादृशगुणानां सत्काराणाञ्च ज्ञातारोऽत्यल्पाः सन्तीत्याशयः । दीपकालंकारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ९ ॥

टि०—अह्नः अपरम् अपराह्णः । "पूर्वाऽपराऽधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे" इति एकदेशिसमासः । अहन् शब्दस्य "अह्नोऽह्न एतेभ्यः" इत्यनेन अह्नादेशः, "अह्नोऽदन्तात्" इत्यनेन नकारस्य णत्वे, अपराह्णश्चासौ कालः, (क० धा०) तस्मिन् = अपराह्णकाले । सुखेन लब्धुं शक्याः, सु + लभ् + खल् + जस् = सुलभाः । दुर् + लभ् + खल् + जस् = दुर्लभाः ।

इति चतुर्थोऽङ्कः

—: * :—

राजा—हाँ । यह ठीक है । यह उत्तम प्रस्ताव है । (उठकर)

महान् गुणों के अथवा सत्कारों के करने वाले लोग संसार में बहुत पाये जाते हैं पर उनके जानकार विरले ही होते हैं ॥ ९ ॥

(सब चले जाते हैं ।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त

—: * :—

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पद्मिनिका ।)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं । [मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(प्रविश्य)

मधुकरिका—हला ! इअह्मि । किं करीअदु ? [हला ! इयमस्मि । किं क्रियताम् ?]

पद्मिनिका—हला ! किं ण जाणासि तुवं-भट्टिदारिआ पदुमावदी सीषंवेदणाए दुक्खाविदेत्ति । [हला ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

मधुकरिका—हद्धि । [हा धिक् ।]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्य अवन्तिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं । एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि । [हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामवन्तिकां शब्दायस्व । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति ।]

शीर्षवेदनया = शिरःपीडया । शब्दायस्व = आकारय । शीर्षवेदनां त्रिनोद-

---

(पद्मिनिका का प्रवेश)

पद्मिनिका—मधुकरिका ! ओ मधुकरिका ! जल्दी आओ ।

(प्रवेश करके)

मधुकरिका—सखी ! यह मैं आ गई । क्या करना है ?

पद्मिनिका—सखी ! क्या तू नहीं जानती कि राजकुमारी पद्मावती शिर-दर्द से पीड़ित हैं ?

मधुकरिका—हाय, बहुत बुरा ।

पद्मिनिका—सखी ! जल्दी जा, आर्या आवन्तिका को बुला ला । केवल राजकुमारी के शिर-दर्द को ही बताना । फिर वे स्वयं ही चली आवेंगी ।

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला किं सा करिष्यति ?]

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि। [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति ।]

मधुरिका—जुज्जइ । कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ? [युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहिके किल सेज्जा त्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं अहं वि भट्टिणो णिवेदणत्थं अय्यवसन्तअ अण्णेसामि । [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।]

मधुकरिका—एव्वं होदु । (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु ।]

यति=शिरःपीडामपाकरोति । शयनीयम्=शय्या । रचितम्=सज्जितम् । समुद्रगृहके=तन्नामके गृहे । समुद्रेण वेष्टितं गृहं समुद्रगृहम् । समुद्रश्चात्र जलबाहुल्यवाचकः । मध्ये गृहं सर्वतश्च जलं वर्तते इति भावः । यथा चोक्तं त्रिकाण्डशेषे––"जलयन्त्रगृहं धीरैः समुद्रगृहमुच्यते" इति । अन्यच्च—"समुद्रगृहमित्युक्तं जलयन्त्रनिकेतनम्" इति हारावली ।

टि०—कृ धातोः कर्मणि लोटि=क्रियताम् । 'शब्द' शब्दात् 'शब्दवैरकलहाऽभ्रकण्वमेधेभ्यः करणे" इत्यनेन क्यङि, लोटि, थासि, ङित्वात् "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" इत्यनेनात्मनेपदे=शब्दायस्व । शय्यतेऽस्मिन् इति विग्रहे "शीङ्-

---

मधुकरिका—सखी ! वे क्या करेंगी ?

पद्मिनिका—वे आकर मधुर कहानियाँ सुनाकर राजकुमारी के शिरदर्द को कम करेंगी ।

मधुकरिका—ठीक है । राजकुमारी की सेज कहाँ बिछी है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह में सेज बिछी है । अब तू जा । मैं भी महाराज को सूचित करने के लिए आर्य वसन्तक को खोजती हूँ ।

मधुकरिका—ठीक है । (चली जाती है ।)

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसन्तअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्यवसन्तक पश्यामि ?]

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदोपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चन्तसुहावहे मङ्गलोसवे मदणग्गिदाहो अहिअदरं बड्ढइ । (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि ! पदुमिणिआ ? पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते । अयि ! पद्मिनिका ? पद्मिनिके ! किमिह वर्तते ?]

पद्मिनिका—अय्य ! वसन्तअ ! किं ण जाणासि तुवं-भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुःखाविदेत्ति । [आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ? ण जाणामि । [भवति ! सत्यं ? न जानामि ।]

स्वप्ने" धातोः "कृत्यल्युटो बहुलम्" इत्यनेन अधिकरणे अनीयर् प्रत्यये कृते = शयनीयम् ।

देवीवियोगविधुरहृदयस्य = वासवदत्ताविरहव्याकुलचित्तस्य । पद्मावती

पद्मिनिका—अब मैं आर्य वसन्तक को कहाँ देखूँ ?

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—देवी वासवदत्ता के वियोग से व्याकुलहृदय वत्सराज उदयन का कामाग्निज्वलन पद्मावती के साथ विवाह होने से आज इस अत्यन्त सुखदायक विवाहोत्सव में बहुत ही उद्दीप्त हो रहा है (पद्मिनिका को देखकर) ओह । पद्मिनिका ! पद्मिनिका ! यहाँ क्या हो रहा है ?

पद्मिनिका—आर्य वसन्तक ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि राजकुमारी पद्मावती सिर-दर्द से पीड़ित हैं ?

विदूषक—देवी ! मैं सचमुच नहीं जानता ।

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं। जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि। [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।]

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा। [समुद्रगृहके किल शय्यास्तीर्णा।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि।]

(निष्क्रान्तौ)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति राजा)

पाणिग्रहणसमीरितस्य = पद्मावतीविवाहप्रेरितस्य। मदनाग्निदाहः = मदनानलज्वलनम्। अधिकतरम् = अत्यधिकम्। भर्त्रे = स्वामिने। शीर्षानुलेपनम् = शिरःपीडापनयनार्थमनुलेपनमौषधम् तत्प्राप्त्यर्थमिति शेषः। त्वरयामि = शीघ्रतां करोमि।

पद्मिनिका—तो फिर इसे राजा को सूचित कर दो। तब तक मैं भी शिरदर्द को दूर करनेवाला लेप तैयार करती हूँ।

विदूषक—पद्मावती का बिस्तर कहाँ बिछाया है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह में बिस्तर बिछाया गया है।

विदूषक—तुम जाओ, तब तक मैं भी महाराज को सूचित करता हूँ।

(दोनों चले जाते हैं।)

(प्रवेशक समाप्त)

(राजा का प्रवेश)

राजा--

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥ १ ॥

विदूषकः--तुवरदु तुवरदु दाव भवं । [त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् ।]

अन्वयः—कालक्रमेण, पुनरागतदारभारः, (अहम्) लावाणके, हुतवहेन, हृताङ्गयष्टिम्, श्लाघ्याम्, अवन्तिनृपतेः, सदृशीम्, तनूजाम्, ताम्, हिमहताम्, पद्मिनीम्, इव चिन्तयामि ॥ १ ॥

व्या०—कालक्रमेण = समयपरिपाट्या । पुनरागतदारभारः = भूयः प्राप्तसहधर्मिणीभारः, परिणीतपद्मावतीक इति भावः अहमिति शेषः । लावाणके = तन्नामके ग्रामे । हुतवहेन = अग्निना । हृताङ्गयष्टिम् = दग्धतनुलताम् । श्लाघ्याम् = स्तुत्याम् । अवन्तिनृपतेः = अवन्तिराजस्य, प्रद्योतस्येति यावत् । सदृशीम् = गुणैरनुरूपाम् । तनूजाम् = सुताम् । ताम् = वासवदत्ताम् । हिमहताम् = तुषारविदलिताम् । , पद्मिनीमिव = कमलिनीमिव । चिन्तयामि = स्मरामीत्यर्थः । उपमालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १ ॥

टि०—देव्याः वियोगः (ष० त०) = देवीवियोगः, विधुरं हृदयं यस्य सः विधुरहृदयः (बहु०) देवीवियोगेन विधुरःहृदयः, तस्य (तृ० त०) = देवीवियोगविधुरहृदयस्य । दाराणां भारः (ष० त०) दारभारः, पुनरागतो दारभारो यस्य सः (बहु०) = पुनरागतदारभारः । श्लाघितुम् योग्याम्—श्लाघ् + ण्यत् + टाप् = श्लाघ्याम् । अङ्गमेव यष्टिः (रूपक०) हृता अङ्गयष्टिः यस्याः, ताम् (बहु०) = हृताङ्गयष्टिम् ।

राजा —कुछ समय के बीत जाने पर पुनः पत्नी-भार को प्राप्त हुआ मैं अनुरूप गुणरूपवती अवन्तिराज की उस प्रशंसनीय कन्या को जिसकी अंगयष्टि लावाणक ग्राम में अग्नि द्वारा जल गई, हिम से विनष्ट कमलिनी की भाँति याद करता हूँ ॥ १ ॥

विदूषक—आप जल्दी करें, जल्दी करें ।

राजा--किमर्थम् ?

विदूषकः--तत्तहोदी पदुमावही सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

राजा--कैवमाह ?

विदूषकः--पदमिणिआए कहिदं । [पद्मिनिकया कथितम् ।]

राजा--भोः ! कष्टम्,

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥ २ ॥

अन्वयः—रूपश्रिया, समुदिताम्, गुणतश्च, युक्ताम्, प्रियाम्, लब्ध्वा, अद्य, मम, शोकः, मन्द इव । पूर्वाभिघातसरुजः, अनुभूतदुःखः, अपि, पद्मावतीम्, अपि, तथैव, समर्थयामि ॥ २ ॥

व्या०—रूपश्रिया = सौन्दर्यवैभवेन । समुदिताम् = संयुक्ताम् । गुणतश्च = माधुर्यादिभिः गुणैश्च । युक्ताम् = सम्पन्नाम् । प्रियाम = कान्ताम्, पद्मावतीमिति भावः । लब्ध्वा = प्राप्य । अद्य = इदानीम् । मम = मे । शोकः = विषादः वासवदत्ताविषयक इत्याशयः । मन्द इव = न्यून इव, अभूदिति शेषः । पूर्वाभिघातसरुजः = प्राक्तनदैवप्रहारपीडितः । अनुभूतदुःखः = निर्विष्टवेदनः अपि । पद्मावतीमपि = मगधराजतनयामपि । तथैव = तेन प्रकारेणैव । समर्थयामि = तर्कयामि । यथा वासवदत्तोपरता तथैव पद्मावत्यपि विनाशं यास्यतीति

राजा—किसलिए ?

विदूषक--देवी पद्मावती शिर-दर्द से पीड़ित हैं ।

राजा--किसने ऐसा कहा ?

विदूषक--पद्मिनिका ने कहा है ।

राजा--हाय, बहुत बुरा हुआ--

सौन्दर्य-सम्पत्ति से युक्त और गुणों से सम्पन्न प्रिया को पाकर वासवदत्ता की मृत्युरूपी चोट से पीड़ित मेरा शोक कुछ कम हुआ था किन्तु पूर्व के दुःखानुभव के कारण मैं पद्मावती को भी वैसी ही (वासवदत्ता के समान मृत्यु को प्राप्त करने वाली) समझता हूँ ॥ २ ॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते पद्मावती ?

विदूषकः--समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा ।]

राजा--तेन हि तस्य मार्गमादेशय ।

विदूषकः--एदु एदु भवं । [एत्वेतु भवान् ।]

(उभौ परिक्रामतः ।)

विदूषकः--इदं समुद्दगिहकं । पविसदु भवं । [इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशतु भवान् ।]

राजा--पूर्वं प्रविश ।

विदूषकः--भो ! तह । (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं । [भोः ! तथा । अविहा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा--किमर्थम् ?

सम्भावयामि । उत्प्रेक्षालङ्कारः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २ ॥

टि०--"(त्रि) त्वरा" धातोर्लोटि=त्वरताम् । लभ्+क्त्वा=लब्ध्वा । पूर्वश्चासौ अभिघातः (क० धा०) = पूर्वाभिघातः, रुजया सहितः सरुजः (तुल्य-योगबहु०), पूर्वाभिघातेन सरुजः (तृ० त०)=पूर्वाभिघातसरुजः । अनुभूतं दुःखं येन सः (बहु०) = अनुभूतदुःखः । आङ्+दिश्+णिच्+लोट्+सिप् = आदेशय ।

अच्छा, पद्मावती कहाँ है ?

विदूषक--समुद्रगृह में उनकी सेज बिछाई गई है ।

राजा--तो फिर उसका मार्ग बताओ ।

विदूषक --आइये, आप आइये ।

(दोनों चलते हैं)

विदूषक--यह रहा समुद्रगृह । आप प्रवेश करें ।

राजा--पहले तुम प्रवेश करो ।

विदूषक--जी अच्छी बात है । (प्रवेश करके) ओह, ठहरिये आप ठहरिए ।

राजा--क्यों ?

विदूषकः--एसो खु दीपप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अज्जं काओअरो। [एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्तमानः अयं काकोदरः।]

राजा--(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) अहो सर्पव्यक्तिवैधेयस्य।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम्।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्तमाना
किञ्चित् करोति भुजगस्य विचेष्टितानि॥ ३॥

दीपप्रभावसूचितरूपः = दीपकप्रकाशप्रकटितस्वरूपः। वसुधातले = पृथ्वीतले। परिवर्त्तमानः = चेष्टमानः। काकोदरः = सर्पः। "कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवा काकोदरः फणी" इत्यमरः। सर्पव्यक्तिः = भुजङ्गप्रतीतिः। वैधेयस्य = मूढस्य। "अज्ञेमूढयथाजातमूर्खवैधेयबालिशाः" इत्यमरः।

अन्वयः—हे मूर्ख ! त्वम्, ऋज्वायताम्, क्षितौ, भ्रष्टाम्, मुखतोरणलोलमालाम्, सर्पम्, अवगच्छसि, या, निशि, मन्दाऽनिलेन, किञ्चित्परिवर्त्तमाना, भुजगस्य, विचेष्टितानि करोति॥ ३॥

व्या०—हे मूर्ख = हे मूढ ! त्वम् = वसन्तकः। ऋज्वायताम् = सरलदीर्घाम्। क्षितौ = पृथिव्याम्। भ्रष्टाम् = पतिताम्। मुखतोरणलोलमालाम् = प्रधानबहिर्द्वारचञ्चलस्रजम्। "तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्" इत्यमरः। सर्पम् = काकोदरम्। अवगच्छसि = विजानासि। या = मुखतोरणलोलमाला। निशि = रात्रौ। मन्दाऽनिलेन = मन्थरपवनेन। किञ्चित्परिवर्त्तमाना = ईषद्विवर्त्तमाना। भुजगस्य = सर्पस्य। विचेष्टितानि = विलुण्ठनादीनि। करोति = विदधाति। वायु-

---

विदूषक--यह दीपक के प्रकाश से प्रकटितस्वरूप पृथ्वीतल पर लोट-पोट होता हुआ साँप !

राजा--(प्रवेश करके देखकर मुस्कुराहट के साथ) ओह ! यह मूर्ख इसे साँप समझ रहा है। मूर्ख ! प्रवेशद्वार पर लटकती हुई सीधी, लम्बी एवं भूमि पर गिरी हुई माला को तू साँप समझ रहा है, जो रात में मन्द वायु के झोंके से उलट-पुलट होती हुई कुछ साँप की चेष्टाओं को कर रही है॥ ३॥

विदूषकः—(निरूप्य) सुट्ठु भवं भणादि। ण हु अअं काओअरो। (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [सुष्ठु भवान् भणति। न खल्वयं काकोदरः। तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम्।

विदूषकः—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य,

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः।

वशाद् विलुण्ठिता रात्रौ भुजग इव मुखतोरणलोलमाला भासते इति भावः। भ्रान्तापह्नुतिरलङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ३ ॥

टि०—दीपस्य प्रभावः (ष० त०)=दीपप्रभावः, सूचितं रूपं यस्य स सूचितरूपः (बहु०) दीपप्रभावेण सूचितरूपः (तृ० त०)=दीपप्रभावसूचितरूपः। परि+वृत्+लट्+शानच्=परिवर्त्तमानः। वि+धा+यत्=विधेयम्, विधेयस्यायं वैधेयः "तस्येदम्" इत्यणि आदिवृद्धौ=वैधेयः, तस्य=वैधेयस्य। ऋजुश्चासौ आयता, ताम् (क० धा०)=ऋज्वायताम्। वि+चेष्ट्+क्त=विचेष्टितानि।

निरूप्य=सम्यग्विलोक्य। निर्गता=निष्क्रान्ता। अनागतया=अनायातया। ज्ञेयम्=ज्ञातव्यम्।

अन्वयः—हि, शय्या, अवनता, न, तथा, आस्तृतसमा, व्याकुलप्रच्छदा न। अमलम् शिरोपधानम्, शीर्षाऽभिघातौषधैः, क्लिष्टम्, न। रोगे, दृष्टि-

---

विदूषक—(देखकर) आप ठीक कहते हैं। यह साँप नहीं है। (प्रवेश कर, देखकर) प्रायः देवी पद्मावती यहाँ आकर चली गई हों।

राजा—मित्र ! आई ही नहीं होंगी।

विदूषक—आप कैसे जानते हैं ?

राजा—इसमें जानना क्या ! देखो—

सेज दबी नहीं है। जैसी बिछी थी वैसी ही है। चादर में कहीं भी सिकुड़न

रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित् कृता
　　प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ।। ४ ।।

विलोभनं, जनयितुम्, काचित्, शोभा, न, कृता । प्राणी, रुजा, शयनम्, प्राप्य, पुनः, शीघ्रम्, स्वयम्, न, मुञ्चति ।। ४ ।।

व्या०—हि = यतः । शय्या = पद्मावत्याः कृते सज्जितं शयनीयम् । अवनता न = न नम्रीभूता । तथा = यथापूर्वम् । आस्तृतसमा = आस्तरेण युक्ता । व्याकुलप्रच्छदा न = देहपरिवर्त्तनेन सङ्कुचितनिचोला न । "निचोलः प्रच्छदपटः" इत्यमरः । अमलम् = स्वच्छम् । शिरोपधानम् = उपबर्हणम् । "शिरस्" शब्दो-यद्यप्यसुन्प्रत्ययान्त एव भृशं प्रयुज्यते किन्तु "शिरोवाची शिरोऽदन्तो रजोवाची रजस्तथा" इति व्याख्यासुधोक्त्या कप्रत्ययान्तस्यापि शिरशब्दस्य क्वाचित्कः प्रयोगो दृश्यतेऽत एव शिरोपधानमित्युक्तम् । "उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धाना मस्तकोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । "उपधानं तूपबर्हः" इत्यमरः । शीर्षाभिघातौषधैः = शिरःपीडापनयनक्षमैरौषधिविशेषैः । क्लिष्टं न = मलीमसं न । रोगे = पीडायाम् । दृष्टिविलोभनम् = नयनाकर्षणम् । जनयितुम् = उत्पादयितुम् । काचित् = काऽपि । शोभा कान्तिरचना, कक्षसज्जारूपेति भावः । न कृता = न विहिता । प्राणी = जनः । रुजा = रोगेण हेतुभूतेन । शयनम् = शय्याम् । प्राप्य = लब्ध्वा । पुनः = भूयः । शीघ्रम् = सत्वरम् । स्वयम् = स्वतः । न मुञ्चति = न जहाति । व्याकुलतावशात् स्थानान्तरं गन्तुं न प्रवर्तते, चिरं शय्यामधिशयान एव तिष्ठतीत्याशयः । अनुमानालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। ४ ।।

टि०—न आगता अनागता, तया (नञ् ०) = अनागतया ।

आस्तृता चाऽसौ समा (क० धा०) = आस्तृतसमा । व्याकुलः प्रच्छदो यस्याः सा (बहु०) = व्याकुलप्रच्छदा । अविद्यमानं मलं यस्य, तत् (नञ् बहु०) = अमलम् । "क्लिशू विबाधने" + क्त = क्लिष्टम् । जन + णिच् + तुमुन् = जनयितुम् । प्राणाः सन्त्यस्मिन्निति, प्राण + इनिः = प्राणी ।

नहीं है । तकिया शिरदर्द की औषधि से मैला नहीं है । रोगावस्था में आँखों को लुभाने के लिए कोई सजावट भी नहीं की गई है । फिर रुग्ण व्यक्ति शय्या पर जाकर स्वयं उसे शीघ्र नहीं छोड़ पाता है ।। ४ ।।

विदूषकः--तेण हि इमस्सि सय्याए मुहूत्तअं उववि‍सिअ तत्तहोदिं पडिवालेदु भवं। [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान्।]

राजा--बाढम्। (उपविश्य) वयस्य ! निद्रां मां बाधते। कथ्यतां काचित् कथा।

विदूषकः--अहं कहइस्सं। हो त्ति करेदु अत्तभवं। [अहं कथयिष्यामि। होम् इति करोत्वत्रभवान्।]

राजा--वाढम्।

विदूषकः--अत्थि णअरी उज्जइणी णाम। तर्हि अहिअरमणीआणि उदअह्वाणाणि वत्तन्ति किल। [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्तन्ते किल।]

राजा--कथमुज्जयिनी नाम ?

विदूषकः--जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं। [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।]

मुहूर्त्तकम् = द्वादशक्षणात्मककालो मुहूर्त्तः। प्रतिपालयतु = प्रतीक्षताम्। बाधते = सादयति। होम् = श्रवणसूचकमव्ययमिदम्। अधिकरमणीयानि = अतिशयमनोहराणि। उदकस्नानानि = स्नानागाराणि, जलाशया इति भावः। अनभिप्रेता = अनीप्सिता।

विदूषक--तो इस सेज पर क्षण-भर बैठकर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा--ठीक है। (बैठकर) मित्र ! मुझे नींद सता रही है। कोई कहानी सुनाओ।

विदूषक--मैं सुनाता हूँ। आप हूँ-हूँ करते जाइए।

राजा--ठीक है।

विदूषक--उज्जयिनी नाम की एक नगरी है। वहाँ बहुत सुन्दर जल-स्नानागार हैं।

राजा--क्या उज्जयिनी ?

विदूषक--यदि यह कहानी आपको पसन्द नहीं तो दूसरी कहता हूँ।

राजा--वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा । किन्तु ।

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः
प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥ ५ ॥

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यथा मामीक्षमाणया ।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥ ६ ॥

टि०--सद्+णिच्+लट्=सादयति । न अभिप्रेता (नञ् त०)= अनभिप्रेता ।

अन्वयः--प्रस्थानकाले, स्वजनम्, स्मरन्त्याः, स्नेहात्, प्रवृत्तम्, नयनान्तलग्नम्, बाष्पम्, मम, एव, उरसि, पातयन्त्याः, अवन्त्याधिपतेः सुतायाः, स्मरामि ॥ ५ ॥

व्या०--प्रस्थानकाले = प्रयाणसमये, उज्जयिनीतः कौशाम्बीं प्रतीति शेषः । स्वजनम्=आत्मीयजनम् । स्मरन्त्याः=ध्यायन्त्याः । स्नेहात्=प्रेम्णः । प्रवृत्तम्=उद्गतम् । नयनान्तलग्नम् = नेत्रप्रान्तावसक्तम् । पातयन्त्याः= मुञ्चन्त्याः । अवन्त्याधिपतेः=अवन्तिराजस्य, प्रद्योतस्येति यावत् । सुतायाः= पुत्र्याः वासवदत्तायाः इति भावः । स्मरामि=चिन्तयामि । उपजाति वृत्तम् ॥ ५ ॥

अन्वयः--उपदेशेषु, अपि, बहुशः, माम्, ईक्षमाणया, यया, स्रस्तकोणेन, हस्तेन, आकाशवादितम्, कृतम् ॥ ६ ॥

राजा--मित्र ! यह कहानी पसन्द न हो ऐसी बात नहीं । किन्तु--

चलते समय आत्मीयजनों को स्मरण करती हुई अवन्तिराज की पुत्री वासवदत्ता की मुझे याद हो आती है, जबकि वह नेत्रों के कोर में उमड़कर लटके हुए आँसुओं को प्रेम से मेरे ही वक्षःस्थल पर गिरा रही थी ॥ ५ ॥

और भी--

वीणा-वादन के शिक्षण में भी कई बार मुझे देखते हुए जिसने हाथ से

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं। अत्थि णअरं बह्मदत्तं णाम। तहिं किल राजा कपिल्लो णाम। [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि। अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम। तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम।]

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम्।

विदूषकः—किं राआ बह्मदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [किं राजा ब्रह्मदत्तः,

---

व्या०—उपदेशेषु अपि = शिक्षणेष्वपि, मत्कृतवीणावादनोपदेशेष्वपीति भावः। बहुशः = बहुबारम्। माम् = शिक्षकम्। ईक्षमाणया = विलोकयन्त्या। यया = वासवदत्तया। स्रस्तकोणेन = स्खलितवीणावादनसाधनविशेषेण। 'कोणो वीणावादनम्' इत्यमरः। लोके त्वेष "मिजराब" इत्यभिधानेन प्रथितः। हस्तेन करेण। आकाशवादितम् = व्योमवादनम्, शून्यस्थलवादनमिति तात्पर्यम्। कृतम् = विहितम्। अनुष्टुब् वृत्तम्॥ ६॥

टि० नयनयोः अन्तौ, नयनान्तौ (ष० त०), तयोर्लग्नं (स० त०) = नयनान्तलग्नम्। पातयतीति पातयन्ती, तस्याः—पत् = णिच् + लट् + शतृ + ङस् = पातयन्त्याः। "स्मरामि" इति क्रियापदप्रयोगे "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति सूत्रेण सुता शब्दात् षष्ठी = सुतायाः। बहुशब्दात् "बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्" इति शस् = बहुशः इति।

अन्याम् = अपराम्, कथामित्याशयः।

'मिजराव' के गिर जाने पर शून्य में ही खाली हाथ चलाये उस वासवदत्ता को स्मरण करता हूँ॥ ६॥

विदूषक—अच्छा, दूसरी कथा कहता हूँ। ब्रह्मदत्त नामक नगर है। वहाँ काम्पिल्य नाम का राजा है।

राजा—क्या, क्या ?

विदूषक—(फिर वही कहता है।)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य—ऐसा कहो।

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य ?

नगरं काम्पिल्यम् ?]

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओठ्ठगअं करिस्सं । राजा ब्रह्मदत्तो, णअरं कपिल्लं । (इति बहुशस्तदेव पठित्वा) इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं वेला । अत्तणो पावारअं गह्णिअ आअमिस्सं । (निष्क्रान्तः) [तेन हि मुहूर्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि ! सुप्तोऽत्र भवान् ? अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वागमिष्यामि ।]

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण, चेटी च ।)

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढं खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [एत्वेत्वार्या । दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

वासवदत्ता—हद्धि, कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए । [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

ओष्ठगतम् = अधरगतम् कण्ठस्थितमिति तात्पर्यम् । वेला = समयः । प्रावारकम् = उत्तरासङ्गम् । "द्वौ प्रावारोत्तरासङ्गौ समौ बृहत्तिका तथा" इत्यमरः । एतु = आगच्छतु । अग्रतः = पुरतः ।

राजा—हाँ, ऐसा ही है ।

विदूषक—तो थोड़ी देर ठहरो, जब तक मैं इसे कण्ठस्थ कर लूँ । राजा, ब्रह्मदत्त और नगर काम्पिल्य (कई बार इसी को कहकर) अब आप सुनें । अरे ! आप तो सो गये । इस समय बहुत ठंडक पड़ रही है । मैं ओढ़ने की चादर लेकर आता हूँ । (निकल जाता है ।)

(अवन्तिका वेष में वासवदत्ता एवं चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्या ! इधर आइए, इधर आइए । राजकुमारी शिरदर्द से बहुत पीड़ित हैं ।

वासवदत्ता—हाय, कष्ट ! पद्मावती की सेज कहाँ बिछी है ?

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जा त्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्या स्तीर्णा ।]

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि । [तेन ह्यग्रतो याहि ।]

(उभे परिक्रामतः ।)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं । पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । (निष्क्रान्ता ।) [इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे । विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्य विस्समत्थाणभूदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा । जाव पविसामि (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजणस्स पमादो । अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदी ओसुत्ता जाव उवविसामि ! अहव अञ्ञासणपरिग्गहेण अप्पो विअ सिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उववि सामि । (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उवविसन्तीए अज्ज पह्लादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा । णिव्वुत्तारोआए होदव्वं ! अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सूएदि मे आलिङ्गेहि त्ति । जाव सइस्सं (शयनं नाटयति) [अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेय-

---

अकरुणाः=निष्ठुराः । विरहपर्युत्सुकस्य=मद्वियोगोत्कण्ठितस्य । विश्रामस्थानभूता = चित्तानुरञ्जनभाजनभूता । अस्वस्था = रुग्णा । प्रमादः = अनवधानता । "प्रमादोऽनवधानता" इत्यमरः । दीपसहायाम् = प्रदीपसहचराम् । अवसुप्ता =

चेटी—समुद्रगृह में सेज बिछी है ।

वासवदत्ता—तो आगे चलो ।

(दोनों चलती हैं ।)

चेटी—यह रहा समुद्रगृह । आप प्रवेश करें । तब तक मैं भी शिर-दर्द का लेप जल्दी से तैयार कर लेती हूँ । (चली जाती है ।)

वासवदत्ता—हाय ! देवता मेरे प्रति निष्ठुर हो रहे हैं । मेरे वियोग से विकल आर्यपुत्र के मनोविनोद का एकमात्र साधन पद्मावती भी रुग्ण हो गई ।

मपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता। यावत् प्रविशामि। अहो! परिजनस्य प्रमादः। अस्वस्थां पद्मावतीं केवलदीपसहायां कृत्वा परित्यजति। इयं पद्मावत्यवसुप्ता। यावदुपविशामि। अथवान्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति। तदस्यां शय्यायामुपविशामि। किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम्। दिष्ट्याऽविच्छिन्नसुखनिःश्वासा। निवृत्तरोगया भवितव्यम्। अथवैकदेश-संविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति। यावच्छयिष्ये।

शयाना। अन्यासनपरिग्रहेण = भिन्नासनाङ्गीकारेण। प्रतिभाति = प्रतीयते। प्रह्लादितमिव = आनन्दितमिव। दिष्ट्या = सौभाग्येन। अविच्छिन्नसुखनिः-श्वासा = निरन्तरसुखश्वासा। निवृत्तरोगया = रोगरहितया। एकदेशसंविभा-गतया = एकभागविभागतया। आलिङ्ग्य = आश्लिष्य। नाटयति=अभिनयति।

टि०—अभि + धा + कर्मणि लोट् = अभिधीयताम्। स्वप् + क्त = सुप्तः। स्तृ + क्त + टाप् = स्तीर्णा। त्वरा + णिच् + लट् + मिप् = त्वरयामि। ईश्वर इति, "ईश ऐश्वर्ये" धातोः 'स्थेशभासपिसकसोवरच्' इत्यनेन वरच् = ईश्वरः। अविद्यमाना करुणा येषां ते (नञ् बहु०) = अकरुणाः। विरहेण पर्युत्सुकः, तस्य (तृ० त०) = विरहपर्युत्सुकस्य। प्र + मद् + घञ् = प्रमादः। दीपः सहायो यस्याः, सा, ताम् (बहु०) दीपसहायाम्। अविच्छिन्नः सुखः निःश्वासो यस्याः सा (बहु०) अविच्छिन्नसुखनिःश्वासा। निवृत्तो रोगो यस्याः सा निवृत्तरोगा, तया (बहु०) = निवृत्तरोगया।

अच्छा, मैं भीतर चलूँ। (भीतर जाकर और देखकर) ओह, सेवकों की लापरवाही! जो कि पद्मावती को दीपक के सहारे अकेली छोड़कर चले गये। पद्मावती सोई है। तो मैं भी बैठती हूँ। अथवा यदि मैं दूसरे आसन पर बैठी तो यही समझा जायगा कि पद्मावती के प्रति मेरा प्रेम कम है। अतः इसी शय्या पर बैठ जाऊँ। (बैठकर) क्यों आज इसके साथ बैठते हुए मेरा हृदय प्रसन्न सा हो रहा है? सौभाग्य से यह सुखपूर्वक साँस ले रही है। लगता है यह नीरोग हो गई है। अथवा सेज पर एक ओर सोने से मानों मुझे कह रही है कि मुझे आलिङ्गन कर। अच्छा, मैं सो जाऊँ। (सोने का अभिनय करती है।)

राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हं ! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठह्मि ? महन्तो खु अय्यजोअन्धराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो । [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ? किन्नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः ।]

राजा—हा ! अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण एत्थ कोच्चि जणो । जाव मुहूतअं चिट्ठिअ दिट्ठि हिअअं च तोसेमि । [दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।]

राजा—हा ! प्रिये ! हा ! प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

स्वप्नायते = स्वप्नं पश्यतीति भावः । सहसा = अकस्मात् । निष्फलः = व्यर्थः संवृत्तः = सञ्जातः ।

टि०—स्वप्न + क्यङ् + ते = स्वप्नायते । निर्गतं फलं यस्मात्सः (बहु०) निष्फलः ।

प्रतिवचनम् = प्रत्युत्तरम् । आलपामि = वार्तालापं करोमि । कुपिता = क्रुद्धा ।

राजा—(स्वप्न में) वासवदत्ता !

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) हैं ! ये तो आर्यपुत्र हैं, पद्मावती नहीं । क्या देख ली गई हूँ ? आर्य यौगन्धरायण का महान् प्रतिज्ञा-बोझ मेरे देखे जाने से व्यर्थ चला गया ।

राजा—हाय ! अवन्तिराजकुमारी !

वासवदत्ता—सौभाग्य से आर्यपुत्र स्वप्न में बोल रहे हैं । यहाँ कोई मनुष्य नहीं । थोड़ी देर रुककर दृष्टि और हृदय को प्रसन्न कर लूँ ।

राजा—हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! मुझे उत्तर दो ।

वासदवत्ता—आलवामि भद्र ! आलवामि। [आलपामि भर्तः ! आलपामि ।]

राजा—किं कुपितासि ?

वासवदत्ता—ण हि ण हि, दुक्खिदह्मि । [नहि नहि, दुःखितास्मि ।]

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इदो वरं किं ? [इतः परं किम् ?]

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अवेहि, इहावि विरच्चिआ ? [आ अपेहि इहापि विरच्चिका ?]

राजा—तेन हि विरच्चिकार्थं भवतीं प्रसादयामि। (हस्तौ प्रसारयति।)

वासवदत्ता—चिरं ठिदह्मि। को वि मं पेक्खे। ता गमिस्सं। अहव सय्यासपलम्बिअं अय्यउत्तस्य हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं। (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता।) [चिरं स्थितास्मि। कोऽपि मां पश्येत्। तद् गमिष्यामि। अथवा शय्याप्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि।]

विरच्चिकाम् = एतन्नाम्नीं दासीम् । आ = कोपद्योतकमव्ययमिदम् । अपेहि = अपगच्छ। प्रसादयामि = आह्लादयामि । चिरम् = बहुकालपर्यन्तम् । शय्याप्रलम्बितम् = शयनस्रंसितम् नीचैः लम्बमानमिति भावः। आरोप्य = स्थापयित्वा।

वासवदत्ता—उत्तर देती हूँ स्वामिन् ! उत्तर देती हूँ।

राजा—क्या तुम रुष्ट हो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं। मैं दुःखी हूँ।

राजा—यदि रुष्ट नहीं हो तो फिर तुमने अपने गहने क्यों नहीं पहने हैं ?

वासवदत्ता—और क्या ?

राजा—क्या तुम विरच्चिका को याद कर रही हो ?

वासवदत्ता—(रोषपूर्वक) हटो, क्या यहाँ भी विरच्चिका ?

राजा—तो विरच्चिका के लिये मैं तुझे मनाता हूँ। (हाथ फैलाता है।)

वासवदत्ता—मैं देर तक रुक गई। कोई भी मुझे देख सकता है। इसलिए

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ । हा ! धिक् ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः ।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥ ७ ॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि ! प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]

राजा— वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

टि०—तुष्+णिच्+लट्+मिप्=तोषयामि । प्रिया चाऽसौ शिष्या (क० धा०) तत्सम्बुद्धौ=प्रियशिष्ये । आङ्+लप्+मिप्+आलपामि । अप+इण्+लोट्+सिप्=अपेहि । प्र+सृ+णिच्+लट् = प्रसारयति ।

अन्वयः—सम्भ्रमेण, निष्क्रामन्, अहम्, द्वारपक्षेण, ताडितः, ततः, अयम्, मनोरथः, भूताऽर्थः (वा) इति, व्यक्तम्, न जानामि ॥ ७ ॥

व्या०—सम्भ्रमेण=त्वरया । निष्क्रामन्=निर्गच्छन् । अहम्=उदयनः । द्वारपक्षेण = द्वारस्यैकतरकपाटेन । ताडितः=प्रतिहतः, अस्मीति शेषः । ततः=तस्मात् कारणात् । अयम्=वासवदत्तासंस्पर्शः । भूतार्थः=यथार्थः । (अथवा) मनोरथः=मनोऽभिलाषः, काल्पनिक इति भावः । तत्, व्यक्तम्=स्फुटम् । न जानामि=नावगच्छामि । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ७ ॥

प्रतिबुद्धः=जागरितः । प्रियम्=अभीष्टम् । आवेदये=विज्ञापयामि । धरते=अवतिष्ठते । उपरता = मृता ।

अब चलती हूँ । अथवा सेज से लटकते हुए आर्यपुत्र के हाथ को सेज पर रखकर चलूँ । (वैसा करके चली जाती है।)

राजा—(सहसा उठकर) वासवदत्ता ! ठहरो ! ठहरो ! हा ! धिक्कार है । मैं सहसा निकलता हुआ द्वार के किनारे से टकरा गया। मैं स्पष्ट नहीं जानता कि यह घटना वास्तविक है या केवल मेरी मनोऽभिलाषा है ॥ ७ ॥

(प्रवेश करके)

विदूषक—अरे ! आप तो जाग गये हैं ।

राजा—मित्र ! मैं तुम्हें एक प्रिय बात कहता हूँ । वासवदत्ता निश्चय ही जीवित है ।

विदूषकः—अविहा ! वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ! चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविहा ! वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता !
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोऽस्मि रुमण्वता ॥ ८ ॥

विदूषकः—अविहा ! असम्भावणीअं एदं ण । आ उदअह्लाणसङ्कित्तणेण तत्तहोदिं चिन्तअन्तेण सा सिविणे दिट्ठा भवे । [अविहा ! असम्भावनीयमेतन्न । आ ! उदकस्नानसङ्कीर्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।]

टि०—भूतश्चासौ अर्थः (क० धा०) = भूतार्थः । प्रति + बुध् + क्त = प्रतिबुद्धः । उप + रम् + क्त + टाप् = उपरता ।

अन्वयः—हे सखे ! (वासवदत्ता) शय्यायाम्, अवसुप्तम्, माम्, बोधयित्वा, गता । "दग्धा" इति, ब्रुवता, रुमण्वता, पूर्वम्, वञ्चितः, अस्मि ॥८॥

व्या०—हे सखे = हे मित्र ! (वासवदत्ता) शय्यायाम् = शयनीये । अवसुप्तम् = निद्रितम् । माम् = उदयनम् । बोधयित्वा = जागरयित्वा । गता = कक्षाद् बहिर्गता । दग्धा = अग्निज्वलिता । इति = एवम् । ब्रुवता = वदता । रुमण्वता = एतन्नामकेन सचिवेन । पूर्वम् = प्रथमम् । वञ्चितः = विप्रलब्धः । अस्मि = अभूवम् । अहमिति शेषः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ८ ॥

अविहा = खेदाभिव्यञ्जकमव्ययमिदम् । असम्भावनीयम् = असम्भवम् । उदकस्नानसंकीर्त्तनेन = जलावगाहचर्चाकरणेन । चिन्तयता = स्मरता ।

विदूषक—हा ! वासवदत्ता ! कहाँ वासवदत्ता ! वह तो बहुत पहले ही मर चुकी है ।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो ।

मित्र ! सेज पर सोये मुझे जगाकर वह चली गई । पहले "वासवदत्ता जल मरी" यह कहकर रुण्मवान् ने मुझे प्रतारित किया है ॥ ८ ॥

विदूषक—हा ! यह असम्भव है । ओफ ! मैंने जल-स्नानागार की चर्चा

राजा--एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्यात्, विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥ ९ ॥

विदूषकः—भो ! वअस्स ! एदस्सिं णअरे अवन्तिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे । [भो ! वयस्य ! एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।]

राजा--न न,

अन्वयः—तावत्, अयम्, स्वप्नः, यदि, अप्रतिबोधनम्, धन्यम् । अथवा, अयम्, विभ्रमः, स्यात्, चिरम्, मे, विभ्रमः, अस्तु, हि ॥ ९ ॥

व्या०—तावदयम् = वासवदत्तासङ्गमः । स्वप्नो यदि = स्वप्नावस्थः एवासीत् यदि । तर्हि, अप्रतिबोधनम् = अजागरः, एव । धन्यम् = वरम् । अथवा = पक्षान्तरे । अयम् = वासवदत्तादर्शनव्यापारः । विभ्रमः = भ्रान्तिः । स्यात् = भवेत् । तर्हि, चिरम् = बहुकालपर्यन्तम् । मे = मम । विभ्रमः = उन्माद एव । अस्तु हि = भवतु । स्वप्नाद् भ्रान्तेर्वा वासवदत्तासङ्गमो भवेत्तर्हि धन्योऽहं भवेयमितिभावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ९ ॥

टि०—अव + स्वप् + क्त = अवसुप्तम् । बुध् + णिच् + क्त्वा = बोधयित्वा । दह + क्त + टाप् = दग्धा । सम्भावयितुं योग्यम्—सम्भावनीयम्—सम् + भू + णिच् + अनीयर्, न सम्भावनीयम् (नञ् त०) = असम्भावनीयम् । न प्रतिबोधनम् (नञ् ०) = अप्रतिबोधनम् ।

की थी उसीसे वासवदत्ता की याद करते-करते आपने उसे स्वप्न में देखा होगा ।

राजा--अच्छा ! क्या मैंने स्वप्न देखा ?

यदि वह स्वप्न था तो न जागना ही भला था । यदि मेरा यह भ्रम था तो चिरकाल तक मेरा यह भ्रम बना ही रहे ॥ ९ ॥

विदूषक--मित्र ! इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नाम की एक यक्षिणी रहती है । उसे ही प्रायः आपने देखा होगा ।

राजा--नहीं, नहीं ।

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ।। १० ।।

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य,

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ।। ११ ।

अन्वयः—स्वप्नस्य, अन्ते, विबुद्धेन, (मया) चारित्रम्, अपि, रक्षन्त्याः, (वासवदत्तायाः) नेत्रविप्रोषिताऽञ्जनम्, दीर्घालकम्, मुखम्, दृष्टम् ।। १० ।।

व्या०—स्वप्नस्य = निद्रायाः । अन्ते = अवसाने । विबुद्धेन = जागरितेन, मयोदयनेनेति शेषः । चारित्रम् अपि = सद्वृत्तमपि । रक्षन्त्याः = पालयन्त्याः, वासवदत्तायाः इति शेषः । नेत्रविप्रोषिताऽञ्जनम् = नयनदूरीकृतकज्जलम् । दीर्घालकम् = लम्बमानकेशम् । मुखम् = वदनम् । दृष्टम् = अवलोकितम् । अनुष्टुब् वृत्तम् ।। १० ।।

अन्वयः—संत्रस्तया, तया, देव्या, यः, अयम्, बाहुः, निपीडितः । स्वप्नेऽपि, उत्पन्नसंस्पर्शः, रोमहर्षम्, न मुञ्चति ।। ११ ।।

व्या०—सन्त्रस्तया = भीतया । तया देव्या = वासवदत्तया । योऽयं बाहुः = य एष भुजः, मदीय इति शेषः । निपीडितः = दृढं स्वहस्तेन गृहीतः । शयनीये आरोपित इति भावः । तस्मात्कारणात्, स्वप्नेऽपि = निद्रायामपि । 'स्यान्निद्राशयनं स्यापः स्वप्नः संवेश इत्यपि' इत्यमरः । उत्पन्नसंस्पर्शः = सञ्जाततद्धस्तस्पर्शः, सन्नपि । रोमहर्षम् = रोमाञ्चम्, सात्त्विकभावमिति भावः । न मुञ्चति = न त्यजति । वासवदत्ताकरस्पर्शेनेदानीमपि रोमाञ्चः सञ्जायते इति भावः । अनुष्टुब् वृत्तम् ।। ११ ।।

स्वप्न के बाद जब मैं जाग गया तब मैंने स्त्री-चरित्र की रक्षा करने वाली वासवदत्ता का मुँह देखा, जो लम्बे-लम्बे बालों से ढँका था और जहाँ नेत्रों में काजल नहीं था ।। १० ।।

और भी—मित्र ! देखो, देखो ।

भयभीत होकर उसने जो मेरा हाथ पकड़ा, वह निद्रा में भी स्पर्श होने से अभी तक रोमाञ्चित ही है ।। ११ ।।

विदूषकः—मा दाणिं भवं अणत्थं चिन्तिअ। एदु एदु भवं। चउस्सालंपविसामो। [मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा। एत्वेतु भवान्। चतुःशालं प्रविशामः।]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः। अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम्। तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि। सन्नद्धानि। तदुत्तिष्ठतु भवान्।

टि०—चरित्रमेव चारित्रम्. चरित्र+स्वार्थे अण्। विप्रोषितमञ्जनं यस्मिंस्तत् (बहु०) = विप्रोषिताञ्जनम्, नेत्रयोर्विप्रोषिताञ्जनम् (स० त०) = नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्। सम्+त्रस+क्त+टाप्+टा = संत्रस्तया। उत्पन्नः संस्पर्शो यस्य, सः (बहु०) = उत्पन्नसंस्पर्शः। रोम्णां हर्षः, तम् (ष० त०) = रोमहर्षम्।

अनर्थम् = असंगतम् विषयम्। मा=खिन्नो नैव भवत्विति भावः। चतुःशालम् = सञ्जवनम्। "सञ्जवनं त्विदम्। चतुःशालम्" इत्यमरः। शालाचतुष्टयोपेतगृहविशेषम्। बलसमुदायेन = सैन्यसमूहेन। अभिघातयितुम् = व्यापादयितुम्। सन्नद्धानि = तत्पराणि, सन्तीति शेषः।

विदूषक—अब आप व्यर्थ की बातें मत सोचिए। इधर आइए, इधर आइए चौशाला में चलें।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो। हमारे महाराज दर्शक ने आप से कहा है कि आपका मंत्री रुमण्वान् आरुणि के विनाश के लिए भारी सैन्य-समूह लेकर आया है और मेरी भी विजय-सेना हाथी, घोड़े, रथ और पैदल शस्त्रास्त्र से सज्जित है। तो अब आप उठ खड़े हों।

अपि च--

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णी यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम्।
यद्यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा, वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

अन्वयः—(हे राजन्) ते, रिपवः, भिन्नाः। भवद्गुणरताः, पौराः, समाश्वासिताः। या, पार्ष्णी, तस्याः, अपि, भवत्प्रयाणसमये, विधानम्, कृतम्। अरिप्रमाथजननम्, यत्, यत्, साध्यम्, तत्तत्, मया, अनुष्ठितम्। बलैः, त्रिपथगा, नदी, अपि, तीर्णा च। वत्साश्च, तव, हस्ते (सन्ति) ॥ १२ ॥

व्या०--(हे राजन् = हे भूपते) ते = तव। रिपवः = शत्रवः। भिन्नाः = गूढोपायैः भेदं प्रापिताः। भवद्गुणरताः = भवद्दयादाक्षिण्यादिगुणानुरक्ताः। पौराः = नागरिकाः। समाश्वासिताः = "अचिरादेव विजयश्रीयुक्तो वत्सराजो भवतः पालयिष्यति" इत्याश्वासनं प्रापिताः। या पार्ष्णी = सैन्यपृष्ठम्। 'पार्ष्णिः स्त्रीपुंसयोः पादमूले स्याद् ध्वजिनी करौ" इति रन्तिदेवः। तस्या अपि, भवत्प्रयाणसमये = संग्रामविजयाय भवत्प्रस्थानकाले। विधानं कृतम्—तद्रचनं विहितम्। अरिप्रमाथजननम् = रिपुनाशोत्पादकम्। यत् यत् साध्यम् = करणीयम्। तत्तन्मया = दर्शकेन। अनुष्ठितम् = सम्पादितम्। बलैः = सैन्यैः। त्रिपथगा = त्रिमार्गगामिनी, गङ्गेति भावः। स्वर्गमर्त्यपातालमार्गैः गङ्गा गच्छतीति प्रसिद्धम्। नदी अपि = सरिदपि। तीर्णा = तरणविषयीकृता। वत्साश्च = वत्सदेशाः। तव = भवतः। हस्ते = करे, एवेति ज्ञायतामिति शेषः। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥ १२ ॥

टि० —चतस्रः अन्योन्याभिमुखाः शालाः यस्मिंस्तत् (बहु०) = चतुःशालम्।

और भी—आपके शत्रुओंमें भेद कर दिया गया है। आपके गुणोंपर अनुरक्त नागरिकों को भी आश्वस्त कर दिया गया है। आपकी युद्ध यात्रा के समय पृष्ठ रक्षिणी सेना की भी व्यवस्था कर दी गई है। शत्रु-नाश के लिए जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उन्हें जुटा लिया गया है। सेना गंगा को भी पार कर चुकी है। अब वत्सराज्य आपके हाथ में ही हैं ॥ १२ ॥

राजा—(उत्थाय) बाढम् । अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।
विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥ १३ ॥

अमा (सह) समीपे वा भवः, 'अमा'शब्दात् "अव्ययात्यप्" इति सूत्रेण "अमेहक्वतसित्रेभ्य एव" इति वार्तिकबलेन च त्यप् प्रत्ययः = अमात्यः । अभि + हन् + णिच् + तुमुन् = अभिघातयितुम् । हस्तिनश्च, अश्वाश्च रथाश्चेति विग्रहे "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्" इत्यनेन सेनाङ्गत्वात् समाहारद्वन्द्वः = हस्त्यश्वरथम्, हस्त्यश्वरथयुक्ताः पदातयो येषु, तानि (बहु०) = हस्त्यश्वरथपदातीनि । पुरि भवाः, 'पुर' शब्दात् "तत्र भवः" इत्यणि = पौराः । अरीणां प्रमाथः (ष० त०), जनयतीति जननम्—"जनी प्रादुर्भावे" धातोः "कृत्यल्युटो बहुलम्" इत्यनेन ल्युटि—अरिप्रमाथस्य जननम् (ष० त०) = अरिप्रमाथजननम् । त्रयाणां पथां समाहारः = त्रिपथम्, त्रिपथेन गच्छतीति (उपपद स०) = त्रिपथगा ।

अन्वयः—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे, विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे, महार्णवाभे, युधि, उपेत्य, दारुणकर्मदक्षम्, तम्, आरुणिम्, नाशयामि ॥ १३ ॥

व्या०—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे = करिश्रेष्ठाश्वतरणाऽऽधारे । विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे = प्रक्षिप्तशरभयानकोर्मिखण्डयुक्ते । महार्णवाभे = महासमुद्रसदृशे । युधि = संग्रामे । उपेत्य = सम्प्राप्य । दारुणकर्मदक्षम् = क्रूरकार्यनिपुणम् । तम् = पूर्वोक्तम् । आरुणिम् = तन्नामकम् शत्रुम् । नाशयामि = व्यापादयामि । रूपकोपमयोः संसृष्टिः । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ १३ ॥

टि०—नागानामिन्द्राः (ष० त०) नागेन्द्राः, नागेन्द्राश्च तुरङ्गाश्च नागेन्द्रतुरङ्गम् । सेनाङ्गत्वात्समाहारद्वन्द्वः । नागेन्द्रतुरङ्गेण तीर्णः, तस्मिन् (तृ० त०) = नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे । विकीर्णाश्च ते बाणाः (क० धा०) = विकीर्णबाणाः, उग्राश्च तरङ्गाः (क० धा०) उग्रतरङ्गाः, विकीर्णबाणा एवोग्रतरङ्गाः (रूपक०), तैः भङ्गः यस्मिन्, तस्मिन् (व्यधिकरण बहु०) = विकीर्णबाणोग्रतरङ्ग-

---

राजा—(उठकर) ठीक है । यह मैं अब,

श्रेष्ठ हाथियों और घोड़ों का सञ्चार है जिसमें ऐसे, तथा बाणरूप भयङ्कर

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति पञ्चमोऽङ्कः ॥

—ः*ः—

भङ्गे। महाश्वासी अर्णवः (क० धा०) तस्येव आभा यस्य, तस्मिन् (व्य० बहु०) =महार्णवाभे। दारुणं च तत्कर्म (क० धा०) तस्मिन् दक्षः, तम् (स० त०) =दारुणकर्मदक्षम्। नश्+णिच्+लट्, मिप्=नाशयामि।

इति पञ्चमोऽङ्कः

—ः*ः—

तरङ्गों से भययुक्त महान् समुद्र के समान रण में जाकर, क्रूर कर्म में निपुण उस आरुणि नामक शत्रु को नष्ट करता हूँ ॥ १३ ॥

(सब निकल जाते हैं।)

पञ्चम अङ्क समाप्त

—ः*ः—

अथ षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु ? [आर्य ! अहं विजया ।
किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय—एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

काञ्चनतोरणद्वारम्=स्वर्णमयमुख्यद्वारम् । अशून्यम्=स्वावस्थानेन अरिक्तम् । कस्तत्रावतिष्ठते इत्यर्थः ।

निवेद्यताम्=विज्ञाप्यताम् । वत्सराजलाभप्रवृद्धोदयाय = वत्सदेशोपलब्धिसमृद्धोत्कर्षाय । महासेनस्य = उज्जयिनीपतेः । सकाशात् = समीपम् । रैभ्यसगोत्रः=रैभ्यगोत्रोद्भवः । "गोत्रं नाम्न्यचले कुले" इति कोशानुरोधात् रैभ्यनामके गोत्रे भाव्यमिति । अङ्गारवत्या=प्रद्योतभूपतिभार्यया । प्रेषिता=प्रहिता । वासवदत्ताधात्री=वासवदत्तोपमाता । प्रतीहारभूमिम् = द्वारभुवम् । उपस्थितौ=सन्निहितौ ।

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—अरे ! यहाँ कौन स्वर्णमय द्वार पर खड़ा है ?

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य ! मैं विजया हूँ । क्या आदेश है ?

कञ्चुकी—देवी ! वत्सराज्य की प्राप्ति से विशेष समृद्ध महाराज उदयन से आप कहें कि महाराज महासेन के पास से रैभ्यसगोत्र कञ्चुकी एवं माननीय अंगारवती द्वारा प्रेषित वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा, दोनों ही द्वार पर खड़े हैं ।

प्रतीहारी—अय्य ! अदेशकालो पडिहारस्स । [आर्य ! अदेशकालः प्रतीहारस्य ।]

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो । अज्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा। तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीए सद्दो विअ सुणीअदि त्ति । [श्रृणोत्वार्यः । अद्य भर्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा-वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयत इति ।]

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

प्रतीहारी—तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो–कुदो इमाए वीणाए आगमो

टि०—तोरणञ्च तद्द्वारम् (क० धा०) तोरणद्वारम्, काञ्चनञ्च तत्तोरण-द्वारम् (क० धा०)=काञ्चनतोरणद्वारम् । वत्सानां राज्यम् (ष० त०), तस्य लाभः (ष० त०) = वत्सराज्यलाभः । प्रवृद्धः उदयो यस्य, स (बहु०) प्रवृद्धो-दयः, वत्सराज्यलाभेन प्रवृद्धोदयः, तस्मै (तृ० त०)=वत्सराज्यलाभप्रवृद्धो-दयाय । समानं गोत्रं यस्य, स सगोत्रः (बहु०), "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभि-नामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु" इत्यनेन समानस्य सादेशः । रैभ्यस्य सगोत्रः (ष० त०) = रैभ्यसगोत्रः ।

अदेशकालः =देशकालविवर्जितः, अवसर इति शेषः । सूर्यामुखप्रासादगतेन =सूर्यामुखनामकं भवनं प्राप्तेन । केनापि = अज्ञातजनेन । वीणा='वल्लकी' इत्यपरनामा वाद्ययन्त्रविशेषः । घोषवत्याः=एतदाख्यायाः वीणायाः ।

प्रतीहारी—आर्य ! द्वारपाल द्वारा राजा को कहने का यह उचित स्थान एवं समय नहीं है ।

कञ्चुकी—स्थान और समय क्यों उचित नहीं है ?

प्रतीहारी—आर्य ! सुनें—आज महाराज के 'सूर्यामुख' नामक महल में जाकर किसी ने बीणा बजाई है । उसे सुनकर महाराज बोले—"घोषवती का सा शब्द सुनाई पड़ता है ।"

कञ्चुकी—फिर, फिर क्या हुआ ?

प्रतीहारी—तब वहाँ जाकर उन्होंने उससे पूछा—"यह वीणा कहाँ

त्ति । तेण भणिअं--अह्मेहिं णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा । जइ प्पओअण इमाए, उवणीअदु भट्टिणो त्ति । तं च उवणीदं अङ्के करिअ मोहं गदो भट्टा । तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं–दिट्ठासि घोसवदि ! सा हु ण दिस्सदि त्ति । अय्य ! ईदिसो अणवसरो । कहं णिवेदेमि ? [ततस्तत्र गत्वा पृष्टः–कुतोऽस्या वीणाया आगम इति । तेन भणितम्–अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा । यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति । तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्ता । ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्–दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽनवसरः । कथं निवेदयामि ?]

काञ्चुकीयः– भवति ! निवेद्यताम् । इदमपि तदाश्रयमेव ।

प्रतीहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ । ता इह एव्व णिवेदइस्सं ! [आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि ।]

ततः = तदनन्तरम् । पृष्टः = जिज्ञासितः । आगमः = उपलब्धिः । भणितम् = उक्तम् । कूर्चगुल्मलग्ना = कुशस्तम्बपतिता । उपनीयताम् = समर्प्यताम् । अङ्के = उत्सङ्गे । "उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः" इत्यमरः । मोहम् = मूर्च्छाम् । मोहप्रत्यागतेन = प्राप्तचैतन्येन । बाष्पपर्याकुलेन = अश्रुव्याकुलेन । अनवसरः = प्रसङ्गाभावः ।

तदाश्रयम् = वासवदत्ताविषयकम् । अवतरति = अवरोहति ।

टि०—देशश्च कालश्च देशकालौ (द्वन्द्व), अविद्यमानौ देशकालौ यस्य सः

मिली ?" उसने कहा—"हमने नर्मदा के तट पर इसे कुशा की झाड़ी में पड़ी पाया । यदि इसका प्रयोजन आपको हो तो आप इसे रख लें ।" तब उस वीणा को गोद में लेकर महाराज मूर्च्छित हो गये । जब वे होश में आये तो अश्रुपूरित मुख से उन्होंने कहा—"घोषवती ! तुझे तो देख लिया पर वह तो नहीं दिखाई पड़ती ।" इसलिए यह उचित अवसर नहीं है । मैं कैसे जाकर निवेदन करूँ ?

कञ्चुकी—देवी जी ! कहिए कि इसका भी सम्बन्ध उसी से है ।

प्रतीहारी--आर्य । मैं निवेदन करती हूँ । ये महाराज सूर्यामुख भवन से नीचे उतर रहे हैं । इसलिए यहीं पर उनसे कह दूँगी ।

काञ्चुकीयः—भवति । तथा ।

(उभौ निष्क्रान्तौ ।)

(मिश्रविष्कम्भकः)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥ १ ॥

(बहु०)=अदेशकालः । सूर्यामुखं चासौ प्रासादः (क० धा०), सूर्यामुखप्रासादं गतः, तेन (द्वि० त०)=सूर्यामुखप्रासादगतेन । वद्+णिच्+क्त+टाप्=वादिता । कूर्चानां गुल्मः (ष० त०) तस्मिन् लग्ना (स० त०)=कूर्चगुल्मलग्ना । उप+नी+कर्मणि लोट्=उपनीयताम् । बाष्पेण पर्याकुलम्, तेन (तृ० त०) = बाष्पपर्याकुलेन । नि+वद्+णिच्+लट्, मिप् = निवेदयामि । सा (वासवदत्ता) आश्रया यस्य तत् (बहु०) = तदाश्रयम् । अव+तॄ+लट्, तिप्=अवतरति । मिश्रश्चासौ विष्कम्भकः (क० धा०)=मिश्रविष्कम्भकः ।

अन्वयः—हे श्रुतिसुखनिनदे ! देव्याः, स्तनयुगले, जघनस्थले च, सुप्ता, कथन्नु, विहगगणरजोविकीर्णदण्डा, प्रतिभयम्, अरण्यवासम्, अध्युषिता, असि ?

व्या०—हे श्रुतिसुखनिनदे=हे श्रवणप्रियध्वनियुक्ते ! वीणे इत्याशयः । "शब्दे निनादनिनदध्वनिध्वानरवस्वनाः ।" इत्यमरः । देव्याः = वासवदत्तायाः । स्तनयुगले = कुचयुग्मे । जघनस्थले च=श्रोणीपुरोभागे च । "जघनं स्यात् स्त्रियाः श्रोणी पुरोभागे कटावपि" इति मेदिनी । सुप्ता=शयनं लब्धा सती ।

कञ्चुकी—देवी जी ! बहुत अच्छा ।

(दोनों चले जाते हैं ।)

(मिश्रविष्कम्भक समाप्त)

(राजा एवं विदूषक का प्रवेश)

राजा—कानों को सुख देने वाले शब्दों से युक्त हे वीणे ! (पहले तुम)

अपि च, अस्निग्धासि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि—

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥ २ ॥

(इदानीम्) कथन्नु = केन प्रकारेण नु । विहगगणरजोविकीर्णदण्डा = खगयूथमलव्याप्तदण्डा सती । प्रतिभयम् = भयङ्करम् । "भयङ्करम् प्रतिभयम्" इत्यमरः । अरण्यवासम् = वनवासम् । अध्युषितासि = आश्रितवत्यसि । पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ १ ॥

अस्निग्धा = प्रीतिरहिता । तपस्विन्याः = वासवदत्तायाः इति भावः ।

टि०—श्रुत्योः सुखः (स० त०) श्रुतिसुखो निनदो यस्याः सा श्रुतिसुखनिनदा (बहु०) तत्सम्बुद्धौ = श्रुतिसुखनिनदे । स्तनयोर्युगलम्, तस्मिन् (ष० त०) = स्तनयुगले । विहगानां गणः (ष० त०) तस्य रजांसि, विहगगणरजांसि (ष० त०) । विकीर्णो दण्डो यस्याः सा विकीर्णदण्डा (बहु०), विहगगणरजोभिः विकीर्णदण्डा (तृ० त०) = विहगगणरजोविकीर्णदण्डा । उष्यते अस्मिन्निति वासः, "वस निवासे" धातोः "हलश्च" इत्यधिकरणे घञ्, अरण्यम् एव वासः, तम् (रूपक०) = अरण्यवासः ।

तपः अस्ति अस्याः इति तपस्विनी, तस्याः = तपस्विन्याः । तपस् शब्दात् "तपः सहस्राभ्यां विनीनी" इत्यनेन विनिः, स्त्रीत्वाद् "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इत्यनेन ङीप् ।

अन्वयः—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि, खेदस्तनान्तरसुखानि, उपगूहितानि, विरहे माम्, उद्दिश्य, परिदेवितानि, वाद्यान्तरेषु, सस्मितानि, कथितानि, च (न स्मरसि) ॥ २ ॥

वासवदत्ता के स्तनों और जङ्घाओं पर सोती थी । अब पक्षियों के मल से लिप्तदण्ड होकर इस भयङ्कर वन प्रदेश में कैसे निवास करती हो ? ॥ १॥

और भी, हे घोषवती ! तू बहुत ही स्नेहहीन है, जो कि वासवदत्ता की—जांघों पर उठाना, बगल में दबाना, थक जाने पर सुख से स्तनों के बीच रखना, मेरे वियोग में विलाप करना और वीणा बजाते समय बीच-बीच में मुस्कुराहट

विदूषकः—अलं दाणिं भवं अदिमत्तं सन्तप्पिअ। [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्।

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥ ३ ॥

व्या०—या त्वं तपस्विन्याः, श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि = जघनधारणकक्षाऽधोभागसंस्पर्शनानि। खेदस्तनान्तरसुखानि = खेदे श्रमे सति कुचमध्ये सुखकराणि। उपगूहितानि = आलिङ्गनानि। विरहे = वियोगे। माम् = उदयनम्। उद्दिश्य = मामभिलक्ष्य। परिदेवितानि = विलापवचनानि। "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः। वाधान्तरेषु = वीणाभ्यासवेलामध्येषु, विश्रामार्थम्मध्ये लब्धेष्ववसरेष्वितिभावः। "अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये। छिद्रात्मीयविनाबहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च" इत्यमरः। सस्मितानि = मन्दहासयुक्तानि। कथितानि = प्रशंसावचनानि। (न स्मरसि = न ध्यायसि) अत एवाऽप्रीतासि इत्यनेनान्वयः। वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २ ॥

टि०—श्रोण्या समुद्वहनानि (तृ० त०), पार्श्वे निपीडितानि (स० त०) श्रोणीसमुद्वहनानि च पार्श्वनिपीडितानि च तानि (द्वन्द्व) = श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि। स्तनयोरन्तरम् (ष० त०), तस्मिन् सुखानि (स० त०), खेदे सति स्तनान्तरसुखानि (स० त०) = खेदस्तनान्तरसुखानि। वाधस्य अन्तराणि, तेषु (ष० त०) = वाधान्तरेषु। स्मितेन सहितानि (तुल्ययोग बहु०) = सस्मितानि।

अलम् = पर्याप्तम्, वारणार्थकमव्ययम्। अतिमात्रम् = अत्यधिकम्। संतप्य = चिन्तयित्वा।

अन्वयः—चिरप्रसुप्तः, मे, कामः, वीणया, प्रतिबोधितः, यस्याः, घोषवती,

---

के साथ मुझसे बातें करना—आदि सभी बातों को भूल गई है ॥ २ ॥

विदूषक—अब आप अधिक सन्ताप न करें।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो।

बहुत दिनों से सोये पड़े वासवदत्ता विषयक मेरे प्रेम को वीणा ने जगा

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः।) [यद् भवानाज्ञापयति।]

(प्रविश्य)

प्रतिहारी--जेदु भट्टा। एसो खु महासेणस्स सआसादो रैब्भसगोत्तो कंचुईओ देवीए अङ्गारवदीए पेसिदा अय्या वसुन्धरा णाम वासवदत्ता-धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [जयतु भर्ता। एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याऽङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ता-धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ।]

प्रिया, ताम्, देवीम्, तु, न, पश्यामि ॥ ३ ॥

व्या०—चिरप्रसुप्तः=बहुकालं यावद् प्रतिबुद्धः। मे=मम। कामः=अभिलाषः, वासवदत्ताविषयक इति भावः। वीणया=घोषवत्या। प्रतिबोधितः =उद्बोधितः। यस्याः=वासवदत्तायाः। घोषवती=इयं पुरोवर्तिनी वल्लकी। प्रिया=प्रीतिप्रदा। ताम्=तादृशीम्। देवीम् तु=वासवदत्तां तु। न पश्यामि =न प्रेक्षे। अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ ३ ॥

शिल्पिजनसकाशात्=कारुजनसमीपात्। "कारुः शिल्पी" इत्यमरः। नवयोगाम्=नूतनतन्त्र्यादिसम्बन्धयुक्ताम्।

अङ्गारवत्या=महासेनपत्न्या। आहूयताम्=आकार्यताम्।

दिया है किन्तु जिसे (वासवदत्ता को) यह वीणा अत्यधिक प्रिय थी, उस देवी को मैं नहीं देख रहा हूँ ॥ ३ ॥

वसन्तक ! घोषवती को कारीगरों से ठीक कराकर ले आओ।

विदूषक--जैसी आपकी आज्ञा। (वीणा लेकर चला जाता है।)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी--महाराज की जय हो। महासेन के पास से आये हुए रैभ्यस-गोत्र कञ्चुकी एवं देवी अङ्गारवती द्वारा प्रेषित वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा—दोनों दरवाजे पर खड़े हैं।

राजा—तेन हि पद्मावती तावदाहूयताम् ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च ।)

प्रतीहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ । [एत्वेतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतं ? महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च, प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे आदिकुलस्स कुसलवुत्तंतं सोदुं । [आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

टि०—सम् + तप् + क्त्वा, ल्यप् = सन्तप्य । चिरं प्रसुप्तः (सुप्सुपा०) = चिरप्रसुप्तः । प्रति + बुध् + णिच् + क्त = प्रतिबोधितः । शिल्पं (क्रियाकौशलं) यस्य स शिल्पी—शिल्प + इनिः, स चासौ जनः (क० धा०), तस्य सकाशः, तस्मात् (प० त०) = शिल्पिजनसकाशात् । नवोयोगः (तन्त्र्यादि सम्बन्धः) यस्याः, सा, ताम् (बहु०) = नवयोगाम् । आङ् + ह्वेञ् + कर्मणि लोट् = आहूयताम् ।

ज्ञातिकुलस्य = स्वजनवंशस्य । "सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः"

राजा—तो पद्मावती को बुला लाओ ।

प्रतीहारी—जैसी आपकी आज्ञा । (चली जाती है ।)

राजा—क्या महासेन ने यह वृत्तान्त शीघ्र ही जान लिया ?

(पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—राजकुमारी ! आइए, आइए ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—पद्मावती ! क्या तुमने सुना कि महासेन के पास से आये हुए रैभ्य-सगोत्र कंचुकी और महारानी अंगारवती द्वारा भेजी गई वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा द्वारस्थल पर उपस्थित हैं ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! बन्धुजनों के वंश का समाचार सुनना मुझे प्रिय है ।

राजा—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितं—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति। पद्मावति! आस्यताम्। किमिदानीं नास्यते?

पद्मावती—अय्यउत्त! किं मए सह उववि‌ट्ठो एवं जणं पेक्खिस्सदि? [आर्यपुत्र! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं द्रक्ष्यति?]

राजा—कोऽत्र दोषः?

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि। [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति।]

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति। तस्मादास्यताम्।

इत्यमरः। आस्यताम् = उपविश्यताम्। अपरः = अन्यः। परिग्रहः = परिजनः। 'पत्नीपरिजनादानमूलशापाः परिग्रहाः" इत्यमरः। इति = एतस्मात्कारणात्।

कलत्रदर्शनाऽर्हम् = भार्याविलोकनयोग्यम्। "कलत्रंश्रोणिभार्ययोः" इत्यमरः। "अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमेकमपि द्विजः" इति दक्षस्मृतिवचनात् गृहस्थः पत्नीदर्शनयोग्यो भवतीति राज्ञोऽभिप्रायः। परिहरति = वर्जयति। बहुदोषम् = अधिकदूषणम्। उत्पादयति = जनयति। आविग्ना इव = भीतेव। संवृत्ता = सञ्जाता।

टि०—ज्ञातेः कुलम्, तस्य (ष० त०) = ज्ञातिकुलस्य। दृश् + लृट् + तिप् = द्रक्ष्यति। कलत्रस्य दर्शनम् (ष० त०) कलत्रदर्शनमर्हतीति, तम् (उपपदसमासः) = कलत्रदर्शनाऽर्हम्। आङ्पूर्वकात् "ओविजीभय संचालनयोः" धातोः

राजा—यह आपने उचित ही कहा है कि वासवदत्ता के बन्धुजन मेरे ही बन्धुजन हैं। पद्मावती! बैठो। इस समय तुम क्यों नहीं बैठती?

पद्मावती—आर्यपुत्र! क्या मेरे साथ बैठकर आप उन लोगों से मिलेंगे?

राजा—इसमें दोष क्या है?

पद्मावती—आर्यपुत्र का यह दूसरा विवाह है, ऐसा सोचकर उन्हें बुरा लगेगा।

राजा—जो पत्नीदर्शन के योग्य व्यक्ति को पत्नीदर्शन से रोकता है वह बहुत बुरा करता है। इसलिए तुम बैठो।

पद्मावती--जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविश्य) अय्यउत्त ! तादो वा अम्बा वा किं णु खु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता । [यदार्य-पुत्र आज्ञापयति । आर्यपुत्र ! तातो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्नेव संवृत्ता ।]

राजा--पद्मावति ! एवमेतत् ।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा ।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ॥ ४ ॥

क्तः, स्त्रीत्वविवक्षायां टाप्, विग्नेति, ईषद् विग्ना इति विग्रहे "कुगति प्रादयः" इति समासः = आविग्ना ।

अन्वयः—किम्, वक्ष्यति, इति, मे, हृदयम्, परिशङ्कितम् । मया, कन्या, अपहृता अपि । सा च, न, रक्षिता । चलैः, भाग्यैः, महदवाप्तगुणोपघातः, पितुः, जनितरोषः, पुत्र इव, अस्मि ॥ ४ ॥

व्या०—किं वक्ष्यति = किं भणिष्यति, तातो महासेनो माता अङ्गारवती वेति शेषः । इति = इत्थं विचिन्त्य । मे = मम । हृदयम् = चित्तम् । परिशङ्कितम् = शङ्काकुलम्, वर्तते इति शेषः । मया = उदयनेन । कन्या = कुमारी, वासवदत्तेति भावः । अपहृता = अपनीता । परिणयं विनैव अवन्तिदेशात् कौशाम्बीं प्रापितेति भावः । स च = अपहृता वासवदत्तेति भावः । न रक्षिता = न पालिता । चलैः = अस्थिरैः । भाग्यैः = प्रारब्धैः । महदवाप्तगुणोपघातः = गुरु-

---

पद्मावती--आर्यपुत्र की जो आज्ञा । (बैठकर) आर्यपुत्र ! पिता या माता क्या कहेंगी यही सोचकर थोड़ा डर रही हूँ ।

राजा--पद्मावती ! तुमने ठीक ही कहा है ।

वे क्या कहेंगे यह सोचकर मेरा हृदय शंकित हो रहा है । मैंने उनकी कन्या का अपहरण कर लिया पर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका । चञ्चल भाग्यों के फेर से बड़ों के गुणों को नष्ट करने वाला मैं पिता को क्रुद्ध करने वाले पुत्र के समान डरा हुआ हूँ ॥ ४ ॥

पद्मावती—ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले ? [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ?]

प्रतीहारी—एसो कञ्चुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा। [एष काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ।

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम्।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता)। [यद् भर्ताऽऽज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च।)

काञ्चुकीयः—

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः।

जनलब्धगुणभङ्गः। पितुः=तातस्य। जनितरोषः=उत्पादितक्रोधः। पुत्र इव=तनय इव। भीतोऽस्मि = शङ्कितोऽस्मि। उपमालङ्कारः। वसन्ततिलकं वृत्तम्।

प्राप्तकाले=लब्धावसरे, उचितसमये इति भावः। रक्षितुम्=त्रातुम्।

टि०--वच्+लृट्+तिप्=वक्ष्यति। अवाप्तो गुणोपघातो येन सः (बहु०), महताम् अवाप्तगुणोपघातः (ष० त०)=महदवाप्तगुणोपघातः। जनिते रोषे येन सः (बहु०)=जनितरोषः। प्राप्तश्चाऽसौ कालः, तस्मिन् (क० धा०)=प्राप्तकाले।

अन्वयः—इदम्, सम्बन्धिराज्यम्, एत्य, महान, प्रहर्षः, पुनः, नृपसुतानिधनम्, श्रुत्वा, महान् विषादः। हे देव ! परैः, अपहृतम्, राज्यम्, देव्याः, कुशलं

पद्मावती—उचित समय पर क्या नहीं बचाया जा सकता है ?

प्रतीहारी—कंचुकी और धाय द्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—उन्हें शीघ्र लिवा लाओ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा। (चली जाती है)

(कंचुकी धाय और प्रतीहारी का प्रवेश)

कञ्चुकी—ओह !

इस सम्बन्धिराज्य में आकर बड़ी प्रसन्नता हुई फिर राजकुमारी की मृत्यु को याद कर बहुत खेद हुआ। हे देव ! शत्रु द्वारा छीने गये राज्य की पुनः प्राप्ति

किं नाम दैव ! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥ ५ ॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उवसप्पदु अय्यो । [एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।

धात्री—जेदु भट्टा । [जयतु भर्ता ।]

राजा—(सबहुमानम्) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयाऽस्तमयप्रभुः ।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ? ॥ ६ ॥

च, स्यात्, यदि ? तर्हि, भवता, किं नाम, न कृतम् ॥ ५ ॥

व्या०—इदम् = एतत् । सम्बन्धिराज्यम् = भर्तृजामातृराष्ट्रम् । एत्य = प्राप्य । मम = काञ्चुकीयस्य । महान् = अत्यधिकः । प्रहर्षः = प्रमोदः । पुनः = भूयः । नृपसुतानिधनम् = राजकुमारीमरणम्, वासवदत्तामृत्युमिति भावः । स्मृत्वा = विचिन्त्य । विषादः = खेदः । हे दैव = हे विधे ! परैः = शत्रुभिः । अपहृतम् = स्वायत्तीकृतम् । राज्यम = राष्ट्रम् । तथैव देव्याः = वासवदत्तायाः । कुशलं च = क्षेमं च । स्यात् यदि = भवेच्चेत् । तर्हि, भवता = त्वया ! किं नाम = कुशलम् । न कृतम् = न सम्पादितम् । सर्वमपि त्वया सम्पादितमिति भावः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ ५ ॥

सबहुमानम् = समधिकसमादरसहितम् यथा स्यात्तथा ।

अन्वयः—पृथिव्याम्, राज्यवंश्यानाम्, उदयाऽस्तमयप्रभुः, मया, कांक्षितबान्धवः, सः, राजा, कुशली अपि ?

के साथ-साथ वासवदत्ता के जीवित रहने का शुभसमाचार—ये दोनों बातें यदि एक साथ हो जातीं तो आपने क्या नहीं किया होता ॥ ५ ॥

प्रतीहारी - यह हैं महाराज, आप इनके पास चलें ।

कञ्चुकी—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

धाय—महाराज की जय हो ।

राजा—(बहुत आदर के साथ) आर्य !

पृथ्वी पर राजकुल में उत्पन्न, क्षत्रियों के उत्थान तथा पतन करने में समर्थ

काञ्चुकीयः--अथ किम् ? कुशली महासेनः। इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति।

राजा--(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः--सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य। नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः।

राजा--यदाज्ञापयति महासेनः। (उपविशति)

व्या०--पृथिव्याम्=लोके। राज्यवंश्यानाम्=नृपकुलोत्पन्नानाम्। उदयाऽस्तमयप्रभुः=उत्कर्षविनाशक्षमः। एवञ्च, मया = उदयनेन, सहेति शेषः। कांक्षितबान्धवः = अभिलषितबन्धुभावः। सः = लोकविश्रुतः। राजा=नृपः, प्रद्योत इति भावः। कुशली अपि=अनामयः किमिति जिज्ञासा। अनुष्टुप् छन्दः।

टि०---सम्बन्धिनोराज्यं, तत् (ष० त०) = सम्बन्धिराज्यम्। नृपस्य सुता (ष० त०) तस्याः=निधनम् (ष० त०) =नृपसुतानिधनम्। उप+सृप्+लोट्, तिप्=उपसर्पतु। बहुश्चासौ मानः (क० धा०), बहुमानेन सहितं यथा तथा (तुल्ययोगबहु०) =सबहुमानम्। राज्ञां वंश्याः, तेषाम् (ष० त०) =राजवंश्यानाम्। उदयनम् उदयः, उद्+इण्+अच्=उदयः अस्तमयनम् अस्तमयः---अस्तम्+इण्+अच्। उदयश्च अस्तमयश्चेति उदयास्तमयौ (द्वन्द्व), तयोः प्रभुः (स० त०)= उदयास्तमय प्रभुः। बन्धोर्भावो बान्धवम्बन्धु+अण्। कांक्षितं बान्धवं येन सः (बहु०) = कांक्षित बान्धवः। कुशलम् अस्ति अस्य इति-कुशल+इनिः = कुशली।

वैदेहीपुत्रस्य=विदेहतनयासुतस्य।

और मुझसे बन्धुभाव की इच्छा रखने वाले वे राजा (उज्जयिनी-पति) सकुशल हैं ? ॥ ६ ॥

कंचुकी--और क्या ? महासेन सकुशल हैं। यहाँ भी सबका कुशल पूछते हैं।

राजा--(आसन से उठकर) महासेन की क्या आज्ञा है ?

कंचुकी—यह विनम्रताप्रदर्शन आपके अनुरूप ही है। आसन पर बैठे हुए ही आप महासेन का संदेश सुनें।

राजा--महासेन की जो आज्ञा। (बैठ जाता है।)

काञ्चुकीयः--दिष्ट्या परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति । कुतः--

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥ ७ ॥

राजा--आर्य ! सर्वमेतन्महासेनप्रभावः । कुतः--

अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।

अन्वयः—ये, कातराः, अपि वा, अशक्ताः, तेषु, उत्साहः, न, जायते । हि, प्रायेण, नरेन्द्रश्रीः, सोत्साहैः, एव, भुज्यते ॥ ७ ॥

व्या०—ये=पुरुषाः । कातराः=भीरवः । "अधीरे कातरस्त्रस्नौ भीरुभीरुकभीलुकाः इत्यमरः । अपि वा=अथवा । अशक्ताः=शक्तिरहिताः, असमर्थाः इति भावः । तेषु=तादृशेषु कातरजनेषु । उत्साहः=अध्यवसायः । "उत्साहोऽध्यवसायः स्यात्" इत्यमरः । न जायते=नोत्पद्यते । हि=यतः । प्रायेण=बहुधा । नरेन्द्रश्रीः=राज्यलक्ष्मीः । सोत्साहैरेव=उत्साहसम्पन्नैरेव जनैः । भुज्यते=सेव्यते । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

टि०—"जनीप्रादुर्भावे"+लट्, त=जायते । भुज्+लट्+त = भुज्यते ।

अन्वयः—पूर्वम्, तावत्, अहम्, अवजितः, सुतैः, सह, लालितः । मया, कन्या, दृढम्, अपहृता, भूयः, न रक्षिता, च । तस्याः, निधनम्, अपि, श्रुत्वा,

---

कंचुकी--सौभाग्य से शत्रु द्वारा छीना गया राज्य पुनः वापस ले लिया गया है । क्योंकि--

जो डरपोक और असमर्थ होते हैं उनमें उत्साह नहीं होता । प्रायः उत्साही पुरुष ही राज्यलक्ष्मी का उपभोग करते हैं ॥ ७ ॥

राजा—यह सब महासेन का ही प्रभाव है । क्योंकि—

पहले उन्होंने मुझे पराजित कर अपने पुत्रों के साथ मेरा पालन किया । उनकी कन्या का मैंने कठोरतापूर्वक अपहरण किया पर मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका । उसकी मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर भी उसके प्रति मुझ में पूर्व की भाँति ही आत्मीयता का भाव बना हुआ है । निश्चय ही मेरे उचित वत्सराज्य का पाने

निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र किं कारणम् ॥८॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः। देव्याः सन्देशमिहात्रभवतो कथयिष्यति।

राजा—हा! अम्ब!

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता।
मम प्रवासदुःखार्ता माता कुशलिनी ननु?॥९॥

मयि, तथा, एव, स्वता। ननु, उचितान्, वत्सान्, प्राप्तुम्, अत्र, नृपः, कारणम् हि ॥ ८ ॥

व्या०—पूर्वम् तावत्=प्रथमं तावत्। अहम्=उदयनः। अवजितः=निगृहीतः। तथापि सुतैः सह=स्वकीयात्मजैः सह। लालितः=वात्सल्यभावेन पालितः। मया=उदयनेन। कन्या=राजकुमारी, वासवदत्तेति भावः। दृढम्=कठोरं यथा स्यात्तथा। अपहृता=पलाय्य स्वराष्ट्रमानीता। भूयः=पुनः। न रक्षिता=न परिपालिता। तस्याः=वासवदत्तायाः। निधनमपि=मृत्युमपि। श्रुत्वा=आकर्ण्य। मयि=मद्विषये। तथैव=तादृशी एव। स्वता=आत्मीयता। ननु उचितान्=युक्ताधिकारविषयान्। वत्सान्=वत्सदेशान्। प्राप्तुम्=अधिगन्तुम्। अत्र=इह विषये। नृपः=राजा प्रद्योत एव। कारणम्=निमित्तम्। हि=निश्चयेन। राज्ञो महासेनस्यैव महिम्ना मया स्वकीयं राज्यमधिगतमिति तात्पर्यम्। हरिणीवृत्तम् ॥ ८ ॥

टि०—स्वस्य भावः, स्व+तल्+टाप्=स्वता।

हा अम्ब! = हा मातः!

अन्वयः—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा, पुण्या, नगरदेवता, मम, प्रवासदुःखार्त्ता, माता, कुशलिनी ननु?॥ ९ ॥

में महाराज महासेन ही कारण हैं ॥ ८ ॥

कंचुकी—यह महासेन का सन्देश है। महारानी का सन्देश आर्या वसुन्धरा सुनायेंगी।

राजा—हाय माता!

अन्तःपुर की सोलह महारानियों में प्रमुख, पवित्र और नगर की देवता के

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पुच्छदि। [अरोगा भट्टिनी भर्त्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति।]

राजा—सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुशलम्।

धात्री—मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं सन्तप्पिदुं। [मेदानीं भर्तातिमात्रं सन्तप्तुम्।]

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः। उपरताऽप्यनुपरता ! 'महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानार्यपुत्रेण। अथवा—

व्या०—षोडशान्तःपुरज्येष्ठा = षोडशानां राजदाराणां मध्ये ज्येष्ठा, प्रधाना, प्रधानराजमहिषीति भावः। अन्तःपुरशब्दो राजदारपरः। तथाहि— "अन्तःपुरं स्यादवरोधनम्", अन्यच्च "अवरोधिस्तिरोधाने राजदारेषु तद्गृहे" इति। पुण्या = पुण्याचरणा। नगरदेवता = पुरदेवीस्वरूपा, नागरिकैः पूजनीयेति भावः। एवं च, मम = जामातुः। प्रवासदुःखार्त्ता = देशान्तरगमनदुःखपीडिता। माता = जननीस्थानीया, श्वश्रूरङ्गारवतीति भावः। कुशलिनी ननु = अनामया- किम् ? "ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्" इति मनुस्मृतिवचनात् 'कुशल' शब्दस्य "अनामयः" इत्यर्थो विधेयोऽत्र। अनुष्टुप्छन्दः ॥ ९ ॥

अरोगा = आरोग्यसम्पन्ना। धारयतु = अवलम्बताम्, स्वमिति शेषः।

उपरता = मृता। अनुपरता = जीविता। अनुकम्प्यमाना = अनुगृह्यमाणा।

टि०—'अम्बा' शब्दात् सम्बुद्धौ 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' इति ह्रस्वः = हे अम्ब ! षोडशेषु अन्तःपुरेषु ज्येष्ठा (उत्तरपद०) = षोडशान्तःपुरज्येष्ठा।

अविद्यमानो रोगो यस्याः, सा (नञ् बहु०) = अरोगा। मात्रामतिक्रान्तं यथा तथा, "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इत्यनेन समासः = अतिमात्रम्। अनुकम्प्यत इति, अनु + कपि + कर्मणि लट्, शानच् + टाप् = अनुकम्प्यमाना।

समान तथा मेरे प्रवासदुःख से पीडित माताजी सकुशल तो हैं न ? ॥ ९ ॥

धाय—महारानी नीरोग हैं और आपका सपरिवार कुशलमंगल पूछती हैं।

राजा—सपरिवार कुशलमंगल ? माता ! ऐसा ही कुशल है।

धाय—महाराज ! अब आप अधिक सन्ताप न करें।

कंचुकी—धैर्य रखें महाराज ! महासेन की पुत्री मरकर भी नहीं मरी है। जबकि आप उसके प्रति इतनी सहानुभूति रखते हैं। अथवा—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥ १० ॥

राजा—आर्यं मा मैवम्,

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥ ११ ॥

अन्वयः—मृत्युकाले, कः, कम्, रक्षितुम्, शक्तः ? रज्जुच्छेदे, के घटम्, धारयन्ति ? एवम्, लोकः, वनानाम्, तुल्यधर्मः, काले, काले, छिद्यते रुह्यते च ।

व्या०—मृत्युकाले = मरणसमये । कः = जनः । कम् = जनम् । रक्षितुम् = त्रातुम् । शक्तः = समर्थः । न कोऽपीति भावः । रज्जुच्छेदे = गुणभङ्गे जाते सति । के = जनाः । घटम् = कलशम् । धारयन्ति = दधति ? न केऽपीत्यर्थः । एवम् = अनेन प्रकारेण । लोकः = जनः । वनानाम् = वृक्षाणाम्, वनस्थानामिति शेषः । तुल्यधर्मः = समानधर्मः । काले काले = समये समये । छिद्यते = कृत्यते । रुह्यते च = स्वत एवोत्पद्यते च । यथा वृक्षाः समयानुसारं छिद्यन्ते पुनश्च कालान्तरे उत्पद्यन्ते तथैव जना अपि काले प्राप्ते सति म्रियन्ते पुनरपि जायन्ते च । शालिनीवृत्तम् ॥ १० ॥

टि०—मृत्योः कालः, तस्मिन् (ष० त०) = मृत्युकाले । रज्जोश्छेदः, तस्मिन् (ष० त०) = रज्जुच्छेदे । तुल्यः धर्मो यस्य, सः (बहु०) = तुल्यधर्मः ।

अन्वयः—महासेनस्य, दुहिता, मे, प्रिया, शिष्या, देवी, च, सा, मया, देहान्तरेष्वपि, कथम्, स्मर्त्तुम्, शक्या, न ? ॥ ११ ॥

व्या०—मे = मम । प्रिया = अभिमता । शिष्या = वीणावादनकलायां

मृत्यु का समय उपस्थित हो जाने पर कौन किसे बचा सकता है ? जब रस्सी टूट जाती है तो घड़े को गिरने से कौन रोक सकता है ? इसी प्रकार मनुष्य भी वृक्षों के समान धर्मवाला ही है—समय-समय पर मरता है और समय-समय पर पुनः जन्म लेता है ॥ १० ॥

राजा—आर्य ! ऐसा न कहो ।

वह महासेन की पुत्री मेरी शिष्या और प्रिय पत्नी थी । जन्म-जन्मान्तरों में भी मैं उसे कैसे भूल सकता हूँ ? ॥ ११ ॥

धात्री—आह भट्टिणी—उदरदा वासवदत्ता। मम वा महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पुढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति। एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो। अणग्गिसक्खिअं वीणा-ववदेसेण दिण्णा। अत्तणो चवलदाए अणिवुत्तविवाहमङ्गलो एव्व गदो। अहअ अह्मेहिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो। एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा। एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि। [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता। मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ, तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति। एतन्निमि-त्तमुज्जयिनीमानीतः। अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता। आत्मनश्चपल-तयाऽनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव गतः। अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव।]

शिक्षणीया आसीदिति भावः। देवी = महाराज्ञी। च, सा = वासवदत्ता। मया = उदयनेन। देहान्तरेष्वपि = जन्मान्तरेष्वपि। कथम् = केन प्रकारेण। स्मर्त्तुम् = ध्यातुम्। शक्या न = पार्या नेति काकुः—

अन्यजन्मनि या विद्या ह्यन्यजन्मनि यद्धनम्।

अन्यजन्मनि या नारी ह्यग्रे धावति धावति॥ इति स्मरणादिति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ११ ॥

भट्टिनी = स्वामिनी। गोपालकपालकौ = एतन्नामकौ पुत्रौ। अभिप्रेतः = तात्पर्यविषयीभूतः। एतन्निमित्तम् = जामातृत्वसम्पादनार्थम्। आनीतः = प्रापितः। अनग्निसाक्षिकम् = न विद्यते अग्निः साक्षी यस्मिंस्तत्। वीणाव्य पदेशेन = वल्लकीवादनशिक्षणव्याजेनेति भावः। चपलतया = चञ्चलतया। अनिर्वृत्तविवाहमङ्गल एव = असम्पन्नपरिणयोत्सव एव। चित्रफलकायाम् = आलेख्यपीठिकायाम्। प्रतिकृतिम् = प्रतिच्छायाम्। निर्वृत्तः = निष्पन्नः। एताम् = चित्रफलकाम्। निर्वृत्तो भव = शान्तो भव।

धाय—महारानी ने कहा है—"वासवदत्ता मर गई। तुम मेरे या महासेन के लिए गोपाल तथा पालक जैसे प्रिय पुत्र हो। हमने पहले ही तुम्हें जामाता

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या ।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि ।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥ १२ ॥

टि०—शास्+क्यप्+टाप् = शिष्या । अन्ये देहाः देहान्तराणि, तेषु= देहान्तरेषु, "मयूरव्यंसकादयश्चे"ति समासः । न विद्यते अग्निः साक्षी यस्मिन् कर्मणि तत् (नञ् बहु०)=अनग्निसाक्षिकम् । वीणायाः व्यपदेशः, तेन (ष० त०)=वीणाव्यपदेशेन । न निर्वृत्तम् (नञ्०)=अनिर्वृत्तम् । विवाहस्य मङ्गलम् (ष० त०), अनिर्वृत्तम् विवाहमङ्गलं यस्य, सः (बहु०)=अनिर्वृत्तविवाहमङ्गलः । चित्रस्य फलका, तस्याम् (ष० त०)=चित्रफलकायाम् ।

अतिस्निग्धम्=समधिकस्नेहयुक्तम् । अनुरूपञ्च=उचितञ्च ।

अन्वयः—एतत्, वाक्यम्, राज्यलाभशतात्, अपि, प्रियतरम् । यत्, अपराद्धेषु अपि, अस्मासु, स्नेहः, न विस्मृतः ॥ १२ ॥

व्या०—एतद् वाक्यम्=इदं वचः । राज्यलाभशतात्=बहुराज्य प्राप्तेरपि । प्रियतरम् = सविशेषमभीष्टम् अस्तीति शेषः । यत्=यतः । अपराद्धेष्वपि =कृतापराधेष्वपि, कन्यापहरणरूपादिष्विति भावः । अस्मासु=अस्मद्विषये । स्नेहः = वात्सल्यम् । न विस्मृतः = न विस्मृतिं नीतः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥१२॥

बना लिया था । इसीलिए तुम उज्जयिनी लाये गये थे । अग्नि को साक्षी न बनाकर वीणा सिखाने के बहाने उसे तुम्हे सौंपा था किन्तु अपनी चञ्चलता के कारण बिना विवाह किये ही तुम भाग गये । हम दोनों ने तुम्हारे और वासवदत्ता के चित्रों को फलक पर उतार कर तुम दोनों का विवाह करा दिया । वह चित्रफलक तुम्हारे पास भेजा गया है । इसे देखकर तुम धैर्य-धारण करो ।

राजा—अहो ! महारानी ने अतिप्रिय तथा अपने योग्य ही कहा है—

यह वाक्य सैकड़ों राज्यों की प्राप्ति से भी अधिक प्रिय है क्योंकि वे मेरे अपराधी होने पर भी अपना प्रेम नहीं भूले हैं ॥ १२ ॥

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवावेदुं इच्छामि। [आर्यपुत्र ! चित्रगतगुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि ।]

धात्री--पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। (चित्रफलकां दर्शयति ।) [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा आत्मगतम्) हं ! अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए । (प्रकाशम्) अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ? [हम् अतिसदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ?]

राजा--न सदृशी ! सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ?
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ? ॥ १३ ॥

चित्रगतम् = आलेख्यस्थितम् । अभिवादयितुम् = वन्दितुम् । अतिसदृशी = अतिशयसमाना ।

अन्वयः—अस्य, स्निग्धस्य, वर्णस्य, दारुणा, विपत्तिः, कथम् ? च इदम् मुखमाधुर्यम्, अग्निना, कथम्, दूषितम् ?

व्या०—अस्य = पुरोदृश्यमानस्य । स्निग्धस्य = स्नेहयुक्तस्य, प्रियस्येति-भावः । वर्णस्य = रूपस्य । दारुणा = भीषणा । विपत्तिः = विनाशः । कथम् = केन प्रकारेण ? च = अपि च । इदम् = अलौकिकम् । माधुर्यम् = आनन-सौन्दर्यम् । अग्निना = वह्निना । कथम् = केन प्रकारेण । दूषितम् = विकृतम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १३ ॥

पद्मावती--आर्यपुत्र ! चित्र में गुरुजन (वासवदत्ता) को देखकर मैं प्रणाम करना चाहती हूँ ।

धाय--देखिए राजकुमारी, देखिए । (चित्रपट दिखाती है ।)

पद्मावती—(देखकर स्वगत) यह तो आवन्तिका के अत्यन्त सदृश है । (प्रकट) आर्यपुत्र ! क्या यह आर्या के सदृश हैं ?

राजा—सदृश ही नहीं, मैं तो यह मानता हूँ कि यह वही है । हाय !

इस सुन्दर रूप पर ऐसी घोर विपत्ति कैसे आ पड़ी ? मुख के इस सौन्दर्य को अग्नि ने कैसे विकृत किया ? ॥ १३ ॥

पद्मावती--अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअं अय्याए सदिसी ण वेत्ति। [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेति।]

धात्री--पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका।]

पद्मावती--(दृष्ट्वा) अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसीत्ति। [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यायाः सदृशीति।]

राजा-- देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि। किमिदम् ?

टि० राज्यस्य लाभः (ष० त०), तस्य शतम् (ष० त०), तस्मात्– "पञ्चमी विभक्ते" इत्यनेन पञ्चमी = राज्यलाभशतात्। अतिशयेन प्रियम्, 'प्रिय' शब्दात् "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इत्यनेन तरप् प्रत्ययः = प्रियतरम्। अप + राध् + क्त = अपराद्धेषु। अभि + वद् + णिच् + तुमुन् = अभिवादयितुम्। स्निह् = क्त = स्निग्धस्य। वि + पद् + क्तिन् = विपत्तिः। मुखस्य माधुर्यम् (ष० त०) = मुखमाधुर्यम्।

प्रतिकृतिम् = प्रतिच्छायाम्, तुल्यरूपमिति भावः। चित्रदर्शनात् = आलेख्यावलोकनात्।

प्रभृति = आरभ्य। प्रहृष्टोद्विग्नाम् = प्रसन्नां खिन्नां च।

पद्मावती—आर्यपुत्र के चित्र को देखकर ही मैं जानूंगी कि यह दूसरा चित्र आर्या (आवन्तिका) के सदृश है या नहीं।

धाय—देखें, राजकुमारी देखें।

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्र के चित्र की आर्यपुत्र की आकृति से हो रही समानता को देखकर मैं समझती हूँ कि यह दूसरा चित्र आर्या (आवन्तिका) की आकृति के समान ही है।

राजा—देवी ! चित्रदर्शन से मैं तुझे प्रसन्न और उद्विग्न-सी देख रहा हूँ। यह क्या ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि। [आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति ।]

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम् । [आम् ।]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम् ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! मम कण्णाभावे केणवि बह्मणेण मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो । पोसिदभत्तुआ परपुरुसदंसणं परिहरदि । ता अय्यं मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो । [आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः । प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति । तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः ।]

कन्याभावे = कौमार्यावस्थायाम्, विवाहात्प्रागिति भावः । भगिनिका = स्वसा । न्यासः = निक्षेपः । निक्षिप्तः = स्थापितः । प्रोषितभर्तृका = दूरदेशोषितपतिका । परपुरुषदर्शनम् = अन्यनरविलोकनम् । परिहरति = वर्जयति ।

टि०—ज्ञा + लट् + मिप् = जानामि । चित्रस्य दर्शनम्, तस्मात् (ष० त०) = चित्रदर्शनात् । 'प्रभृति' योगे पञ्चमी । प्रहृष्टा चासौ उद्विग्ना (क० धा०) ताम् = प्रहृष्टोद्विग्नाम् । आङ् + नी + कर्मणि लोट् = आनीयताम् । प्रोषितो भर्त्ता यस्याः सा (बहु) = प्रोषितभर्तृका, "नद्यृतश्च" इति समासान्तः कप् । परश्चासौ पुरुषः (क० धा०) तस्य दर्शनम्, तत् (ष० त०) = परपुरुषदर्शनम् ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस चित्र के समान एक नारी यहीं पर रहती है ।

राजा—क्या वासवदत्ता के समान ?

पद्मावती—हाँ ।

राजा—तो उसे शीघ्र ले आओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! जब मैं कन्या थी तभी किसी ब्राह्मण ने 'यह मेरी बहन है'—ऐसा कहकर मेरे पास उसे धरोहर के रूप में रखा था । उसका पति प्रवास में है अतः वह परपुरुष-दर्शन से बचती है । तो मेरे साथ आने पर उसे आर्या (धाय) देखें और तब आर्यपुत्र जानेंगे (कि वह वासवदत्ता है या नहीं) ।

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥ १४ ॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा। एसो उज्जइणीओ बह्मणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो, तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो। [जयतु भर्ता। एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः।]

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

अन्वयः—विप्रस्य, भगिनी, यदि, (तर्हि) व्यक्तम्, अन्या, भविष्यति। लोके, परस्परगता, रूपतुल्यता, दृश्यते ॥ १४ ॥

व्या०—विप्रस्य = ब्राह्मणस्य। भगिनी = स्वसा। यदि = चेत्। (तर्हि) व्यक्तम् = स्पष्टम्। अन्या = अपरा, वासवदत्ताभिन्नत्वे तात्पर्यम्। भविष्यति = वर्तिष्यते। लोके = संसारे। परस्परगता = पारस्परिकी। रूपतुल्यता = वर्णसादृश्यम्। दृश्यते = अवलोक्यते, विद्यते इत्यर्थः। रूपसादृश्येन सैवेयमिति न सम्भाव्यत इति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ १४ ॥

उज्जयिनीयः = उज्जयिनीवासी। प्रतिग्रहीतुम् = पुनरादातुम्। प्रतीहारम् = द्वारम्।

राजा—यदि वह सचमुच ब्राह्मण की बहिन है तो निश्चय ही कोई दूसरी होगी। संसार में एक दूसरे के रूप की समानता दीख पड़ती है ॥ १४ ॥

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो। यह उज्जयिनी का रहने वाला ब्राह्मण "स्वामिनी के पास मैंने अपनी बहिन को धरोहर के रूप में रखा था, उसे लेने आया हूँ" ऐसा कहकर द्वार पर उपस्थित है।

राजा—पद्मावती ! क्या वही ब्राह्मण है ?

पद्मावती--होदव्वं । [भवितव्यम् ।]

राजा--शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ।

प्रतीहारी--जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति ।]

राजा--पद्मावति ! त्वमपि तामानय ।

पद्मावती--जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यद् आर्यपुत्र आज्ञापयति ।]

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)

यौगन्धरायणः--भोः । (आत्मगतम्)

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।

भवितव्यम् = भाव्यम्, तेनैव ब्राह्मणेनेति शेषः । अभ्यन्तरसमुदाचारेण = राजभवनसदाचारेण, पाद्यार्घ्यादिसमर्पणरूपेणेति भावः । ताम् = आवन्तिकाम् ।

टि०--वि + अञ्ज + क्त = व्यक्तम् । परस्परं गता (द्वि० त०) = परस्परगता । तुल्यस्य भावस्तुल्यता - तुल्य + तल् + टाप्, रूपस्य तुल्यता (ष० त०) = रूपतुल्यता ।

उज्जयिन्यां भवः, "तत्र भवः" इति छ प्रत्ययः, ईयादेशः = उज्जयिनीयः । अभ्यन्तरे समुदाचारः, तेन (स० त०) = अभ्यन्तरसमुदाचारेण । प्र + विश् + णिच् + कर्मणि लोट् = प्रवेश्यताम् । आङ् + नी + लोट्, सिप् = आनय । आत्मानं गतं यथा तथा (द्वि० त०) = आत्मगतम् ।

अन्वयः—नृपतेः, हितार्थम्, राजमहिषीम्, प्रच्छाद्य, मया, हितम्, इति,

---

पद्मावती--सम्भव है ।

राजा--उचित सम्मान के साथ उस ब्राह्मण को शीघ्र भीतर लाओ ।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा । (चली जाती है ।)

राजा—हे पद्मावती ! तुम भी उसे ले आओ !

पद्मावती—आर्यपुत्र ! जैसी आज्ञा करते हैं ।

(यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(स्वगत) ओह !

राजा के कल्याण के लिए महारानी (वासवदत्ता) को छिपाकर 'इसी में

सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ १५ ॥

प्रतीहारी--एसो भट्टा, उपसप्पदु अय्यो । [एष भर्ता । उपसर्पत्वार्यः ।]

यौगन्धरायणः--(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु ।

राजा--श्रुतपूर्व इव स्वरः । भो ब्राह्मण ! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ?

अवेक्ष्य, इदम्, कामम्, कृतम् । मम, कर्मणि, सिद्धे अपि, असौ, पार्थिवः, किम्, वक्ष्यति, इति, मे, हृदयम्, परिशङ्कितम्, नाम ॥ १५ ॥

व्या०—नृपतेः = राज्ञः, उदयनस्येति भावः । हितार्थम् = कल्याणार्थम् । राजमहिषीम् = महाराज्ञीम्, वासवदत्तामिति भावः । प्रच्छाद्यः = संगोप्य । मया = यौगन्धरायणेन । हितम् = कल्याणम्, अपहृतराज्यप्राप्तिरूपमिति भावः । इति अवेक्ष्य = इत्यवधार्य । इदम् = एतत्, पद्मावतीसविधे वासवदत्तायाः निक्षेपत्वेन स्थापनम्, राज्ञः पद्मावत्या सह परिणयश्चेति कार्यद्वयमिति भावः । कामम् = स्वैरं यथा तथा । कृतम् = साधितम् । मम = यौगन्धरायणस्य । कर्मणि = कार्ये । सिद्धेऽपि = प्राप्तफलेऽपि । असौ = परोक्षस्थः । पार्थिवः = राजा उदयनः । किं वक्ष्यति = किं कथयिष्यति । इति = एवम् । मे = मम । हृदयम् = चित्तम् । परिशङ्कितम् = शङ्काकुलम्, वर्तते इति शेषः । वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १५ ॥

उपसृत्य = उपगम्य । श्रुतपूर्वः = पूर्वं श्रुतः । स्वरः = शब्दः ।

टि०--नृणां पतिः, तस्य (ष० त०) = नृपतेः । प्र + छद् + णिच् +

उनका कल्याण होगा' ऐसा समझ कर मैंने यह कार्य अपनी इच्छा से किया । मेरे सभी कार्यों के सिद्ध हो जाने पर भी वह राजा क्या कहेंगे--यह सोचकर मेरा हृदय शङ्कित हो रहा है ॥ १५ ॥

प्रतीहारी--ये महाराज हैं; उनके पास चलें ।

यौगन्धरायण--(पास जाकर) जय हो, महाराज की जय हो ।

राजा--यह स्वर तो पहले सुना हुआ सा मालूम पड़ता है । ऐ ब्राह्मण ! क्या अपनी बहिन को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखा था ?

योगन्धरायणः--अथ किम् ?

राजा--तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका।

प्रतीहारी--जं भट्टा आणवेदि। (निष्क्रान्ता) [यद् भर्ताज्ञापयति।]

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च।)

पद्मावती--एदु एदु अय्या। पिअं दे णिवेदेमि। [एत्वेत्वार्या। प्रियं ते निवेदयामि।]

आवन्तिका--किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती--भादा दे आअदो। [भ्राता ते आगतः।]

आवन्तिका--दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि। [दिष्ट्येदानीमपि स्मरति।]

पद्मावती--(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो : एसो णासो। [जयत्वार्यपुत्रः। एष न्यासः।]

राजा--निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः। इहात्रभवान् रैभ्यः अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः।

क्त्वा, ल्यप् = प्रच्छाद्य। पृथिव्याः ईश्वरः, पृथिवी + घञ् = पार्थिवः। वच् + लृट् + तिप् = वक्ष्यति। पूर्वंश्रुतः श्रुतपूर्वः, "सहसुपे" ति समासः। त्वरा + णिच् + कर्मणि लोट् = त्वर्यताम्।

निर्यातय = निक्षेपमर्पय। साक्षिमत् = साक्षाद् दष्टृयुक्तं यथा तथा।

योगन्धरायण—और क्या ?

राजा—तो इनकी बहिन को लिवा लाने के लिए शीघ्रता करो।

प्रतीहारी—महाराज की जो आज्ञा। (चली जाती है।)

(पद्मावती आवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश)

पद्मावती—आओ आओ आर्या ! इधर आओ ! मैं तुम्हें प्रिय समाचार सुनाती हूँ।

आवन्तिका—क्या, क्या ?

पद्मावती--तुम्हारा भाई आया है।

आवन्तिका--सौभाग्य से वे अब भी मुझे याद रखते हैं।

पद्मावती--(पास पहुँचकर) आर्यपुत्र की जय हो। यह रही धरोहर।

राजा--पद्मावती ! लौटा दो। साक्षी के सामने धरोहर लौटानी चाहिए।

पद्मावती—अय्य ! णीअदां दाणिं अय्या । [आर्य ! नीयतामिदानीमार्या ।]

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ? [अम्भो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता ?]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि ! प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेषा ।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥ १६ ॥

निर्यातयितव्यः = प्रत्यर्पणीयः । अधिकरणम् = आधारः, साक्षीति भावः । नीयताम् = प्राप्यताम्, स्वगृहमिति शेषः । निर्वर्ण्य = विलोक्य ।

अन्वयः—भारतानाम्, कुले, जातः, विनीतः, ज्ञानवान्, शुचिः, राजधर्मस्य देशिकः, (त्वम् असि) तत्, बलात्, हर्त्तुम्, न अर्हसि ॥ १६ ॥

व्या०—भारतानाम् = भरतकुलोद्भवानाम् । कुले = वंशे । जातः = उत्पन्नः । विनीतः = विनयोपेतः । ज्ञानवान् = विवेकशीलः । शुचिः = शुद्धाचारः । राजधर्मस्य = राजोचितकर्त्तव्यस्य । देशिकः = प्रवर्त्तकः । तादृशस्त्वमसीति शेषः । तत् = तस्मात्कारणात् । बलात् = हठात् । हर्त्तुम् = ग्रहीतुम्, परकीयन्यासमिति

इसमें माननीय रैभ्य और आर्या वसुन्धरा देवी साक्षी होंगे ।

पद्मावती—आर्य ! अब आर्या को ले जाइए ।

धाय—(आवन्तिका को देखकर) अरे ! ये तो राजकुमारी वासवदत्ता हैं ।

राजा—क्या महासेन की पुत्री ? देवी ! तुम पद्मावती के साथ अन्तःपुर में जाओ ।

यौगन्धरायण—अन्तःपुर में नहीं भेजें । यह मेरी बहिन है ।

राजा—आप क्या कह रहे हैं । यह तो महासेन की पुत्री है ।

यौगन्धरायण—हे राजन् !

आप भरतवंशी राजाओं के कुलमें उत्पन्न, नम्र, ज्ञानी, पवित्र तथा राजधर्म

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् ! संक्षिप्यतां जवनिका ।

यौगन्धरायणः - जयतु स्वामी ।

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः, इयं महासेनपुत्री ।

किन्नु सत्यमिदं, स्वप्न ? सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाऽप्येवमेवाहं दृष्ट्या वञ्चितस्तदा ॥ १७ ॥

शेषः । नाऽर्हसि = न योग्योऽसि । परिकरालङ्कारः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १६ ॥

टि०—निर् + यत् + णिच् + लोट्, सिप् = निर्यातया । साक्षी अस्ति अस्मिन् तत् यथा तथा-साक्षिन् = मतुप् = साक्षिमत् । निर् + यत् + णिच् + तव्यत् = निर्यातयितव्यः । निर् + वर्ण + णिच् + क्त्वा, ल्यप् = निर्वर्ण्य । भरतानामपत्यानि पुमांसो भारताः, तेषाम् भरतशब्दात् "ऋष्यन्धकवृष्णि कुरुभ्यश्च" इत्यणि = भारतानाम् । वि + नी + क्तः = विनीतः । बलमाश्रित्य, "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इति कर्मणि पञ्चमी = बलात् ।

भवतु = अस्तु, रूपसादृश्यम् = आकृतिसाम्यम् । संक्षिप्यताम् = ईषदपनीयताम् । जवनिका = अवगुण्ठनवस्त्रमिति भावः ।

अन्वयः—इदम्, किम्, सत्यम्, स्वप्नः, नु ? सा, मया, भूयः, दृश्यते । अहम्, तदा, अपि, एवम्, एव, दृष्ट्या, अनया, वञ्चितः ॥ १७ ॥

व्या०—इदम् = पुरोवर्त्तमानं दृश्यम्, यौगन्धरायण-वासवदत्तादर्शनमिति भावः । किं सत्यम् = किं यथार्थम् ? स्वप्नः = स्वापः, अयथार्थमिति भावः ।

के प्रवर्त्तक हैं अतः मेरी बहन का बलपूर्वक अपहरण करना आपके योग्य नहीं है ॥ १६ ॥

राजा—अच्छा, हम आकृति की समानता देखते हैं । घूँघट उठाइए ।

यौगन्धरायण—महाराज की जय हो ।

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—अरे ! ये यौगन्धरायण हैं और ये महासेन की पुत्री हैं !

क्या यह सत्य है अथवा स्वप्न है जो मैं पुनः उसे (वासवदत्ता को) देख रहा हूँ ? पहले भी मैं इसी प्रकार इसे देखकर ठगा गया था ॥ १७ ॥

यौगन्धरायणः--स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । (इति पादयोः पतति ।)

राजा--(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥ १८ ॥

नु = वितर्के । सा = वासवदत्ता । मया = उदयनेन । भूयः = पुनरपि । दृश्यते = अवलोक्यते । अहम् = उदयनः । तदाऽपि = तस्मिन् समये, समुद्रगृहेऽपीत्यर्थः । एवमेव = इत्थमेव । दृष्ट्या = विलोकितया । वञ्चितः = विप्रलब्धः, अन्तर्द्धानेनेति शेषः । अतः किमपि निश्चेतुं न शक्यत इति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ॥१७॥

देव्यपनयेन = वासवदत्तायाः स्वरूपप्रच्छादनपूर्वकमन्यत्र प्रापणेन । कृतापराधः = विहितापराधः ।

अन्वय--मज्जमानाः, वयम्, मिथ्योन्मादैः, युद्धैः, शास्त्रदृष्टैः, मन्त्रितैश्च, भवद्यत्नैः, समुद्धृताः, खलु ॥ १८ ॥

व्या०--मज्जमानाः = आपत्सागरे निमग्नाः । वयम् = उदयनादयः । मिथ्योन्मादैः = अवास्तविकचित्तविभ्रमचेष्टितैः । "उन्मादश्चित्तविभ्रमः" इत्यमरः । युद्धैः = संग्रामैः । शास्त्रदृष्टैः = शास्त्रसम्मतैः । मन्त्रितैश्च = गुप्तविचारैश्च । भवद्यत्नैः = भवत्प्रयासैः । समुद्धृताः = उन्नमिताः, विपत्सागराद्बहिर्निष्कासिताः इत्यर्थः । खलु = निश्चयेन । वृत्तमनुष्टुप् ॥ १८ ॥

टि०--देव्याः अपनयः, तेन (ष० त०) हेतौ तृतीया = देव्यपनयेन ।

मिथ्या कल्पिताः उन्मादाः, तैः (मध्यमपदलोपी समासः) = मिथ्योन्मादैः । मन्त्रणानि मन्त्रितानि, तैः, "मंत्रि गुप्तपरिभाषणे" धातोः "नपुंसके भावेक्तः" इत्यनेन क्तः = मन्त्रितैः । सम् + उद् + धृञ् + क्त + जस्=समुद्धृताः ।

यौगन्धरायण--महाराज ! महारानी को छिपाकर मैंने अपराध किया है इसलिए महाराज मुझे क्षमा करें । (उदयन के पाँवों पर गिरता है ।)

राजा--(उठाकर) आप निश्चय ही यौगन्धरायण हैं ।

विपत्तिरूप सागर में डूबे हुए हमलोग पागलपन के झूठे बहानों, युद्धों, शास्त्रसम्मत मन्त्रणाओं एवं आपके द्वारा किये गये प्रयासों से निश्चय ही बचा लिये गये ॥ १८ ॥

यौगन्धरायणः— स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

पद्मावती— अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणन्तीए अदिक्कन्दो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि । [अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।]

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) उट्ठेहि उट्ठेहि अविहवे ! उट्ठेहि । अत्थिसअं णाम सरीरं अवरद्धइ । [उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ । अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति ।]

स्वामिभाग्यानाम् = राजदैवानाम् । अनुगन्तारः = अनुयायिनः । सखीजन-समुदाचारेण = सखीजनोचिताऽऽचारेण, शिष्टव्यवहारेणेति यावत् । अजानन्त्या = ज्ञानरहितया । समुदाचारः = शिष्टव्यवहारः । अतिक्रान्तः = उल्लङ्घितः । शीर्षेण = शिरसा । प्रसादयामि = अनुनयामि । अविधवे = हे सौभाग्यशालिनि । अर्थिस्वम् = याचकधनम् । अपराध्यति = सापराधं भवति । परिपालयामि = परिरक्षामि ।

टि०—स्वामिनो भाग्यानि, तेषाम् (ष० त०) = स्वामिभाग्यानाम् । अनु + गम् + तृच् = अनुगन्तारः । न जानन्ती, तया—नञ् + ज्ञा + लट्, शतृ + ङीप् + टा = अजानन्त्या । सखी चासौ जनः (क० धा०) तस्य समुदाचारः, तेन (ष० त०) = सखीजनसमुदाचारेण । अति + क्रम + क्त = अतिक्रान्तः । प्र + सद् + णिच् + लट्, मिप् = प्रसादयामि । उद् + स्था + णिच् + क्त्वा, ल्यप् = उत्थाय । विगतो धवो यस्याः सा विधवा (बहु०) न विधवा अविधवा (नञ् ०), तत्सम्बुद्धौ = अविधवे ।

यौगन्धरायण—महाराज के भाग्यों के साथ ही हमारा भी भाग्य जुड़ा हुआ है ।

पद्मावती—अहो ! यह आर्या वासवदत्ता हैं । आर्ये ! अज्ञानवश मैंने आपके साथ सहेली जैसा बर्ताव कर शिष्टाचार का उल्लङ्घन किया है । इसलिए मैं सिर नवाकर आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ ।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) उठो-उठो, सौभाग्यवती ! उठो ! प्रार्थी (यौगन्धरायण) का धनरूप मेरा यह शरीर ही अपराध का कारण है ।

पद्मावती—अणुग्गहिदह्मि । [अनुगृहीताऽस्मि ।]

राजा—वयस्य ! यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति ।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति ।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ?

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम् ।

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान् ।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्त्ततामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च ।

न्यासकारणम् = निक्षेपहेतुः । सर्वैरेव = सकलैरेव अमात्यैः न केवलं रुमण्वतेति भावः । शठः = वञ्चकः । देव्याः = वासवदत्तायाः । कुशलनिवेदनार्थम् = क्षेमज्ञापनार्थम् । अत्रभवती=वसुन्धरा । प्रतिनिवर्त्तताम्=उज्जयिनीं प्रतिगच्छतु ।

पद्मावती—मैं अनुगृहीत हुई ।

राजा–मित्र यौगन्धरायण ! देवी वासवदत्ता को मेरे पास से हटाने में तुम्हारा क्या प्रयोजन था ?

यौगन्धरायण—केवल कौशाम्बी की रक्षा कर सकूं । (राज्य के अन्य प्रदेश शत्रु के हाथों में चले गये थे) इसलिए ।

राजा—पद्मावती के हाथ में वासवदत्ता को धरोहर के रूप में रखने का क्या कारण था ?

यौगन्धरायण—पुष्पक भद्रक आदि ज्योतिषियों का कहना था कि पद्मावती आपकी रानी होंगी ।

राजा—क्या यह रुमण्वान् को मालूम था !

यौगन्धरायण—महाराज ! इसे सब जानते थे ।

राजा—ओह ! रुमण्वान् बड़ा धूर्त है ।

यौगन्धरायण—महाराज ! देवी वासवदत्ता का कुशल-समाचार जानने के

राजा—न, न, सर्वं एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

(भरतवाक्यम्-)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ १९ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

टि०—आदेशेन चरन्तीति आदेशिकाः, तैः—'चरति' इत्यनेन ठञ् (इकः) =आदेशिकैः । या+लृट्, मस् = यास्यामः ।

व्या०—सागरपर्यन्ताम्=सागराः समुद्राः पर्यन्ताः मर्यादाः यस्याः ताम्, समुद्रसीमामिति भावः । हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्=हिमाचलविन्ध्याचलकर्णाभरणाम् । एकातपत्राङ्काम् = एकछत्रचिह्नाम् । इमाम्=एताम् । महीम्= पृथ्वीम् । नः=अस्माकम् । राजसिंहः=नृपश्रेष्ठः, उदयन इति भावः । प्रशास्तु =पालयतु, इत्याशीः । अनुष्टुब् वृत्तम् ॥ १९ ॥

टि०—सागराः पर्यन्ताः यस्याः, सा, ताम् (बहु०)=सागरपर्यन्ताम् । हिमवांश्च विन्ध्यश्चेति हिमवद्विन्ध्यौ (द्वन्द्व), हिमवद्विन्ध्यौ कुण्डले यस्याः, सा, ताम् (बहु०) = हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् । एकम् आतपत्रम् एव अङ्को यस्याः सा, ताम् (बहु०)=एकातपत्राम् ।

इति 'कमलेश्वरी' व्याख्याविलसितं स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

लिए आए हुए आर्य रैभ्य एवं आर्या वसुन्धरा को आज वापस भेज दें ।

राजा—नहीं नहीं । हम सभी पद्मावती के साथ ही वहाँ चलेंगे ।

यौगन्धरायण—महाराज की जो आज्ञा ।

(भरत-वाक्य)

सागर है सीमा जिसकी, हिमालय और विन्ध्याचल हैं कुण्डल जिसके तथा एक छत्ररूप चिह्न से युक्त इस पृथ्वी को हमारे राजसिंह नरेश शासित करें ॥१९॥

(सब चले जाते हैं ।)

—: ❀ :—

परिशिष्टम्

(१) नाटक सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

१—नाटक

वीरश्रृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते ।
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम् ॥

अर्थात् जिसमें वीर अथवा श्रृङ्गार में से किसी एक रस की प्रधानता हो, अन्य रस गौण रूप में वर्णित हो तथा जिसका नायक प्रख्यात चरित्रवान् हो नाटक कहा जाता है। इतिहास–प्रसिद्ध राजा उदयन 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नायक है। उदयन तथा वासवदत्ता की प्रसिद्ध प्रणय-कथा इसका वर्ण्य-विषय है। छः अङ्कों में यह लिखा गया है। अतः साहित्यदर्पण के निम्नोक्त लक्षण के अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नाटकत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम् ।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः ॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः ।
एक एव भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा ।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ॥,' सा० द० ६।७–१० ॥

भरतमुनि के नाट्यशास्त्रमें नाटक का जो लक्षण दिया गया है उसके अनुसार भी 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नाटक होना सिद्ध होता है–

"देवतानामृषीणां च राज्ञां चोत्कृष्टमेधसाम् ।
पूर्ववृत्ताऽनुचरितं नाटकं नाम तद्भवेत् ॥
यस्मात्स्वभावं संन्त्यज्य सांगोपांगव्यतिक्रमैः ।
प्रयुज्यते ज्ञायते च तस्माद्वै नाटकं स्मृतम् ॥" ना० शा–१९।१४७।

२—अङ्क

जो भावों तथा रसों के द्वारा अर्थों को स्फूटित करता हैं, जहां पर नाना प्रकार के विधान हुआ करते हैं, जहां पर एक अर्थ की समाप्ति तथा बीज का उपसंहार हो जाता है किन्तु बिन्दु का सम्बन्ध आंशिक रूप से बना ही रहता है उसे अङ्क कहते हैं—

"अंक इति रुढ़िशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात्तस्माद् भवेदङ्कः ॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः ॥"

ना० शा०—२०।१४—१५ ।

३—नान्दी

नाटक के आरम्भ में देवता, ब्राह्मण अथवा राजाओं की जो आशीर्वादात्मक स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं—

"आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥"

४—स्थापना

जब सूत्रधार, नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्वक के साथ नाटकीय कथावस्तु के निर्देश के लिए विचित्र वाक्यों के द्वारा वार्तालाप करता है तो उसे आमुख या प्रस्तावना कहते हैं । सूत्राधार के स्थापकत्व के कारण ही इसे स्थापना भी कहा जाता है । भास ने अधिकांश नाटकों में प्रस्तावना के स्थान में स्थापना का ही प्रयोग किया है ।—

"नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥" सा० दर्पणः ॥

५—सूत्रधार

नाट्य के उपकरणों को सूत्र कहा जाता है और जो उन्हें धारण करता है अर्थात् उनका संचालन करता है उसे सूत्राधार कहा जाता है—

"नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्राधारो मतो बुधैः ॥"

६—नायक

नायक या नेता शब्द 'नी' धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है ले जाने वाला । जो कथावस्तु को फल की ओर ले जाता है उसे नायक कहते हैं । नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

"नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥" दशरूपक १-२ ॥

नायक के चार भेद माने गये हैं—धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत । प्रस्तुत नाटक का नायक राजा उदयन है जो कोमल प्रकृति का वीणा वादन कला में आसक्त, निश्चिन्त तथा सुखी है अतः वह धीरललित नायक है—

"निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।"

७—नायिका

नायक के ही सामान्य गुणोंसे युक्त नायिका भी होती है । स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के भेद से वह तीन प्रकार की होती है—

"अथ नायिका त्रिभेदा स्वाऽन्या साधारणा स्त्रीति ।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ॥" सा० द० ३।५६ ॥

प्रस्तुत नाटक में वासवदत्ता स्वकीया नायिका है ।

८—विदूषक

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेश-भूषा तथा वचनों से जनता को

हँसाता है, कलह में प्रेम रखता है तथा अपने हास्य-कार्य को उचित समझता है उसे विदूषक कहते हैं। नाटकों में कुसुम, वसन्तक आदि उसके नाम होते हैं—

"कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेशभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥" साहित्य दर्पण॥

९--काञ्चुकीय

काञ्चुकीय के लक्ष्य-क्रम में कहा गया है—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीयेत्यभिधीयते॥"

अर्थात् काञ्चुकीय अन्तःपुर का सेवक होता है। वह वृद्ध, ब्राह्मण तथा विविधगुणों से युक्त होता है कामादि दोषों से वर्जित तथा ज्ञान-विज्ञान में कुशल होना भी उसके लिए आवश्यक है इसलिए मातृगुप्ताचार्य ने कहा है—

"ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषादिवर्जिताः।
ज्ञान-विज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः॥"

१०—नेपथ्यम्

अभिनेता लोग जहाँ वेश-भूषा परिवर्त्तन करते हैं उस स्थान को नेपथ्य कहा जाता है—"कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।" रंगमंच के सौन्दर्याभिवर्धक पर्दे को भी नेपथ्य कहा जाता है—"नेपथ्यं स्याज्जवनिका रंगभूमिप्रसाधनम्।" वेश-भूषा के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। अभिनेता लोग रामादि की प्रतीति के लिए जिस वेश-भूषा को धारण करते हैं वह भी नेपथ्य कहलाता है— "रामादिव्यंजको वेशो नटे नेपथ्यमुच्यते।" (ना० शा०)। इस प्रकार यद्यपि नेपथ्य शब्द का प्रयोग कई अर्थों में होता है परन्तु वेश-भूषा परिवर्त्तन स्थल ही अधिक प्रसिद्ध है।

११--आत्मगत

जब कोई बात दूसरों को न सुनाकर मन ही मन कही जाती है तो उसे स्वगत या आत्मगत भी कहते हैं—

"अश्राव्यं खलु यद् वस्तु तदिह स्वगतं मतम्"॥ सा० द० ६।१३७॥

१२--प्रकाश

जब कोई बात सभी को सुनाकर कही जाय तो उसे प्रकाश कहते हैं—

"सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् ॥" सा० द०-६।१३८

१३--प्रवेशक

कथा दो प्रकार की होती है। पहली वह, जिसे अभिनय द्वारा प्रस्तुत किया जाय और दूसरी वह, जिसकी केवल सूचना दी जाय। नीरस अथवा अनुचित कथाभाग का रंगमंच पर अभिनय नहीं किया जाता अपितु उसे केवल दर्शकों को बता दिया जाता है--

"द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
सूच्यमेव भवेत् किञ्चिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्।
नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः ॥

दशरूपक १।५६-५७ ॥

अभिनेय कथावस्तु की सूचना देने के पांच प्रकार हैं जिन्हें नाट्यशास्त्रीय भाषा में अर्थोपक्षेपक कहा जाता है—

"अर्थोपक्षेपकाः पञ्च विष्कम्भकप्रवेशकौ।
चूलिकाऽङ्कावतारोऽथ स्यादङ्कमुखमित्यपि ॥" सा० द० ६-३४ ॥

संक्षेप में भूत या भविष्यत् की कथावस्तु की सूचना निम्नस्तर के पात्रों द्वारा दिये जाने पर प्रवेशक की स्थिति बनती है। आवश्यक रूप से निम्नस्तरीय पात्रों द्वारा प्रयुक्त होना ही विष्कम्भक और प्रवेशक के मध्य भेद स्थापित करता है—"प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।

अंकद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा ॥" सा० द० ६-५७ ॥

विष्कम्भक का लक्षण करते हुये कहा गया है—

"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥"

१४—आकाशभाषित

जब कोई पात्र 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहता हुआ किसी अन्य पात्र के न होने पर भी वार्तालाप करता है तथा अन्य पात्र के कथन के बिना भी सुनने का अभिनय करके बातचीत करता है तो उसे 'आकाशभाषित' कहा जाता है—

किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विनापात्रं प्रयुज्यते ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तस्मादाकाशभाषितम् ॥" सा० द०–६–१२०॥

१५—अपवारित

जब कोई पात्र अपने मुख को दूसरी ओर करके दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात को कहता है तो उसे 'अपवारित' कहते हैं—

"रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् ।" दशरूपक–९।६६ ॥

स्वगत, प्रकाश, अपवारित, त्रिपताक, पताका, जनान्तिक और आकाशभाषित, ये सब नाट्योक्तियां हैं ।

(२) 'स्वप्नवासवदत्तम्' में प्रयुक्त छन्दों का परिचय

१. अनुष्टुप––"श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघुपञ्चमम् ।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥',

उदाहरण––प्रथम अङ्क–२, ७, १०, १५। चतुर्थ–५, ७, ८, ९, । पंचम–६, ७, ८, ९, १०, ११,। षष्ठ–७, ९, १३, १४, १६, १७, १९ ।

२. उपजाति––अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम ॥

उदाहरण—पंचम–५

३. उपेन्द्रवज्रा––उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

उदाहरण––पंचम–१३

४. शालिनी––मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेद लोकैः

उदाहरण--प्रथम-१३ । चतुर्थ-६ । षष्ठ-१० ।

५. वैश्वदेवी--वाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौयौ ।

उदाहरण--प्रथम-९ ।

६. वसन्ततिलका--उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौ गः

उदाहरण--प्रथम-४, ६, ११ । चतुर्थ-२ । पंचम-१, २, ३ । षष्ठ-२,४, ५.१५ ।

७. शिखरिणी--रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभमलाः गःशिखरिणी ।

उदाहरण--प्रथम-१४, १६ ।

८. हरिणी--नसमरसलाः गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता

उदाहरण--षष्ठ-८ ।

९. शार्दूलविक्रीडित-सूर्याश्वैर्यदि मःसजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

उदाहरण--प्रथम-३,७, १२ । चतुर्थ-१ । पंचम-४, १२ ।

१०. पुष्पिताग्रा--अयुजिनयुगरेफतो यकारो ।
युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

उदाहरण--प्रथम-५ । षष्ठ-१ ।

११. आर्या--यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश साऽऽर्या ॥

उदाहरण--प्रथम-१ । चतुर्थ-३, ५ ।

(३) स्वप्नवासवदत्तम् में प्रयुक्त कतिपय अलङ्कारों का परिचय

१. मुद्रालङ्कार--"सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः ।"

अर्थात् प्रकृत अर्थ में तत्पर पदों से सूच्य अर्थों की सूचना जहां दी जाय वहाँ मुद्रालंकार होता है । उदाहरण--प्रथम अंक-१ म पद्य ।

२. अर्थान्तरन्यास--"सामान्यं वा विशेषणं विशेस्तेन वा यदि ।
कार्यञ्च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ॥ सा० द०-६-४१ ।
साधर्म्येणेतरेणाऽर्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः ॥"

अर्थात् जहाँ सामान्य में विशेष का, विशेष से सामान्य का, कारण से कार्य का या कार्य से कारण का समर्थन हो वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

उदाहरण--प्रथम अंक-४, ७, १५। चतुर्थ अंक-८।

३. उपमा--"साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक उपमा द्वयोः। सा० द०-६।१४।

उदाहरण—पंचम-१।

४. उत्प्रेक्षा—"संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।" काव्यप्रकाश-१०।९२।

जहाँ उपमेय में उपमान के साथ तादाम्य, संभावना हो वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। उदाहरण--पञ्चम-२१।

५. आभासरूपकालंकार-"स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधमाभासरूपकम् ॥" चन्द्रलोक।

उदाहरण—पञ्चम-१।

६. अपह्नुति—"प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः।" का० प्र० १०।९६। जहाँ उपमेयका निषेध कर उपमान की सिद्धि की जाय वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। उदाहरण-पञ्चम-३।

७. दीपक—"सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ॥,' का० प्र०-१०।१०२।

जहाँ उपमेय और उपमान के गुण क्रियादिरूप धर्म का एक बार उपादान अथवा कथन हो वहाँ दीपक अलंकार होता है। उदाहरण--चतुर्थं--९।

८. विरोधाभास—"विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः।" का० प्र० १०। ११०। जहाँ दो वस्तुओं में वस्तुतः किसी विरोध के न रहने पर भी ऐसा वर्णन किया जाय जिससे विरोध की प्रतीति हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

उदाहरण—प्रथम-१३।

९. स्वभावोक्ति—"स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।" का० प्र०-१०।१११। जहाँ पदार्थों की अर्थात बालक आदि की प्रकृति सिद्ध क्रिया का वर्णन हो वहाँ स्वभावोक्ति अलंकार होता है। उदाहरण--प्रथम--१६।

१०. अनुमान—"अनुमानं तदुक्तं यत्साध्यसाधनयोर्वचः।" का०प्र० १०/११७

जहाँ साध्य-साधनरूप से किसी अर्थ का प्रतिपादन किया जाय वहाँ अनुमानालंकार होता है। उदाहरण--प्रथम-१२। पंचम-४।

११. परिकर—"विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः।" का० प्र० १०।११८

जहाँ अभिप्राययुक्त विशेषणों द्वारा प्रकृतार्थ का प्रतिपादन हो वहाँ परिकर अलंकार होता है। उदाहरण--षष्ठ--१६।

(४) स्वप्नवासवदत्ताम् की सूक्तियां

१. "कालक्रमेण जगतः परिवर्त्तमाना, चक्रारपंक्तिरिव गच्छतिभाग्यपंक्ति।" १।२

२. "प्रद्वेषो बहुमानो वा संल्पादुपजायते।" १।७

३. सुखमर्थो भवेद्दातुं, सुखं प्राणाः सुखं तपः।
   सुखमन्यद्भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम्॥"

४. "...नहि सिद्ध वाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि॥" १।१९

५. "तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः।" १।१५

६. "दुःखं त्यतुं बद्धमूलोऽनुरागः,
   स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुखं नवत्वम्।
   यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं,
   प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥"

७. "......स्त्रीस्वाभावस्तु कातरः॥" १।८

८. गुणानां वा विशालानां सत्काराणाञ्च नित्यशः।
   कर्त्तारः सुलभाः लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः।" ४।९

९. "प्राणी प्राप्तरुजा पुनर्नं शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति।" ५।४

१०. "कतरा योऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।
   प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते।" ६।७

११. "कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले,
   रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति?
   एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां,
   काले काले छिद्यते रुह्यते च॥" ६।१०

—:❀:—

पद्यानुक्रमणिका





साहित्यदर्पणम्

'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित

व्याख्याकार—पं० शेषराज शर्मा रेग्मी

पूर्वप्रकाशित संस्करणों की व्याख्याएँ प्राचीन शैली से लिखी होने के कारण आधुनिक सहृदयों को रुचिकर प्रतीत नहीं होती थीं। इसी कमी को दूर करने के लिये इसमें आधुनिक पठन-पाठन के अनुरूप अनावश्यक विस्तार न ... सुबोध संस्कृत-हिन्दी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। व्याख्या में सरलता ला... भरपूर प्रयास किया गया है। इसकी पाण्डित्यपूर्ण विचारों से ओत-प्रोत समीक्षात्मक विशद भूमिका में ग्रन्थ के गम्भीर अध्ययन एवं शोध के परिणाम उपन्यस्त हैं। परीक्षार्थी छात्रों के लिये तो इसकी हिन्दी व्याख्या ही पर्याप्त है। १-६ परिच्छेद ३०-००, ७-१० परिच्छेद ३०-०० संपूर्ण ६०-००

प्रतापरुद्रीयम्

कुमारस्वामि-सोमपीथिकृत 'रत्नापण' टीका सहित

'बालक्रीडा' नामक विमर्शाख्य हिन्दीव्याख्या विभूषित

व्याख्याकार—आचार्य मधुसूदन शास्त्री

इस संस्करण की विशेषता—इसमें मूल के सभी उदाहरणों को सुस्पष्ट करने के लिये मत-मतान्तर-निरासपूर्वक विषय वस्तु का यथार्थ बोध कराया गया है। परन्तु संस्कृत में होने से यह सर्वबोध-गम्य नहीं था, अतः शताधिक ग्रन्थों के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् व्याख्याकार ने हिन्दी व्याख्या में पहले मूल ग्रंथ को लगाकर बाद में 'शंका-समाधान' पूर्वक अलंकारशास्त्र के मार्मिक सिद्धान्तों, क्लिष्ट अंशों तथा मत-मतान्तरों पर सरलतम शब्दों में व्यापक प्रकाश डाला है, जिससे संस्कृतेतर छात्रों के लिये तो अलंकारशास्त्र का यह एक मौलिक ग्रंथ ही बन गया है। ४०-०

उदारराघवम्

'विषमबोधाख्य' संस्कृत टीका सहित

सम्पादक—डॉ० सुधाकर मालवीय

कविमल्ल मल्लाचार्य प्रणीत भगवान् राम के उदार चरित परक इस काव्य में महाकवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण की रामकथा को नव्य, भव्य, काव्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ के आद्यन्त ९ सर्गों में भगवान् राम के उदार चरित का ही भावभीनी सरल सुबोध पद्यों में वर्णन है। राम-कथा के प्रेमी विद्वानों, सन्तों तथा पुस्तकालयों के लिये यह ग्रंथ अवश्य संग्रहणीय है ३५-००

प्राप्तिस्थानम्—कृष्णदास अकादमी, पो० बा० ११८, वाराणसी-२२१००१